ईरान

सभ्यता एवं संस्कृति की एक झलक

सांस्कृतिक केंद्र, इसलामी गणतंत्र ईरान,
18 तिलक मार्ग,
नयी दिल्ली-110001

वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली-110002
फोन : 3275710, 3273167 फैक्स : 3275710
e-mail : vani_prakashan@yahoo.com
vani_prakashan@mantraonline.com

ईरान

सभ्यता एवं संस्कृति की एक झलक

अनुवाद एवं संपादन

चंद्रशेखर

मधुकर तिवारी

ईरान

सभ्यता एवं संस्कृति की एक झलक

मूल कृति : सीमाए-फ़रहंगीए-ईरान

© चंद्रशेखर

चित्र-स्रोत :

- सीमाए-फ़रहंगीए-ईरान, स. अब्बास नामजू, तेहरान
- ईरान, स. जेम्स वेट, फ़रहंग सराए-यसावुली, तेहरान
- ईरानिया, विस्ता अरा सांस्कृतिक केंद्र, तेहरान (सी.डी., प्रथम एवं द्वितीय भाग)
- संस्कृति मंत्रालय, इसलामी गणतंत्र, ईरान द्वारा जारी कैलेंडर 1368 श. (1989-90 ई.)

ISBN 81-7055-131-5

मूल्य : 850.00

प्रथम हिंदी संस्करण : 2002

प्रस्तुति

सांस्कृतिक केंद्र, इसलामी गणतंत्र ईरान

18 तिलक मार्ग, नयी दिल्ली-110001

प्रकाशक

वाणी प्रकाशन

21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

चित्र सज्जा

अकरम परवेज़ तथा पायनियर टेलीकॉम

अंतरिम सज्जा

विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032

पुस्तकावरण

मजीद अहमदी एवं आयशा फ़ौज़िया

शब्द-संयोजन

अकरम परवेज़ एवं हिमांशु प्रिंटर्स, दिल्ली-110007

भारत-ईरान चिरकालीन संबंध तथा
सांस्कृतिक आदान-प्रदान के
प्रति समर्पित

प्राक्कथन

सांस्कृतिक संबंधों के सफ़र पर एक चर्चा

किसी राष्ट्र की संस्कृति, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में अस्तित्ववान जीवन के रंगारंग आयामों के माध्यम से अपने शीर्ष पर पहुँचती है। वस्तुतः संस्कृति के जीवंत होने का द्योतक ही राष्ट्र विशेष का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। सांस्कृतिक विशेषताओं के द्वारा ही एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से वरीयता प्राप्त करता है।

संस्कृति परिणाम है उन उच्च नैतिक मूल्यों एवं आधारभूत आस्थाओं का जो जनसाधारण के चित्त में समय की गति अनुसार परिपक्व होते हैं और नस्ल-दर-नस्ल प्रवाहमान रहते हैं।

सांस्कृतिक विशिष्टताएँ वे प्रतीक एवं चिह्न होती हैं जिनके माध्यम से कोई राष्ट्र अपने आधारभूत नियम तथा आस्था संबंधी दर्शन की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रयोजन के लिए संगीत की मधुर धुनें, चित्रकलाओं द्वारा व्यक्त अछूते प्रारूप एवं आकर्षक आकार, साहित्यिक रचनाएँ अथवा स्थापत्य कला के नमूने तथा परंपराओं एवं रीतिरिवाजों के रूप में निहित गहन दर्शन एवं चिंतन को माध्यम बनाया जाता है। अतः प्रत्येक संस्कृति एक ओर अपनी विशेषताओं के कारण अन्य संस्कृतियों से भिन्न नज़र आती है तो दूसरी ओर वही विशेषताएं उसे अन्य संस्कृतियों से जोड़ने का साधन बनती हैं। वास्तव में जिन कौमों की स्वयं कोई संस्कृति नहीं होती उनमें सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने की क्षमता भी अधिक नहीं होती। अतः जिस राष्ट्र की संस्कृति का आधार जितना सुदृढ़, समग्र तथा धनी होता है उसमें अन्य संस्कृतियों से आदान-प्रदान की क्षमता भी अधिक होती है। मेरे इस कथन का उदाहरण विश्व प्रसिद्ध भारत एवं ईरान के प्राचीन एवं सुदृढ़ सांस्कृतिक संबंध हैं। यह दोनों संस्कृतियाँ, अपनी परिपक्वता, धनाढ्यता एवं स्वग्राहिता तथा धारिता के कारण पारस्परिक संवाद को निरंतर गतिशील रखे हुए हैं। प्रत्येक ने स्वयं के स्वतंत्र अस्तित्व को जीवंत तथा अविलय बनाए हुए पारस्परिक लेन-देन का व्यावहारिक संबंध भी सदैव क़ायम रखा है।

इस अविरत पारस्परिक सांस्कृतिक संवाद के कारण ही भारत और ईरान की महान् सभ्यताओं में अनेक उपलब्धियां अवतरित हुई तथा पारस्परिक बौद्धिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक कृतियाँ विभिन्न क्षेत्रों में रचनाबद्ध हुई। भारत देश की सांस्कृतिक विभूतियों की रचनाओं ने अपनी सादगी एवं तात्विकता के कारण ईरान में भारतीय कला प्रेमियों को अपनी ओर आकृष्ट किया तथा ईरान की सांस्कृतिक, साहित्यिक

एवं कला निधि की उत्कृष्ट शैली को भारतवासियों ने अपने हृदय में विशिष्ट स्थान प्रदान किया। यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान केवल संवर्ग प्रजाति एवं भौगोलिक सहभागिता के आधार पर ही नहीं बल्कि दोनों सभ्यताओं के मध्य विद्यमान जननीय एवं क्रियाशील कारकों तथा नैतिक उत्कृष्टता और आश्चर्यजनक सौंदर्य के माध्यम द्वारा ही संभव हुआ है। एकेश्वरवाद आध्यात्मिक दर्शन तथा उच्च नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के उदाहरणीय तत्त्वों ने भी पारस्परिक समान संबंधों को अस्तित्व में लाने में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

दुर्भाग्यवश चिरकालीन ऐतिहासिक सांस्कृतिक संबंधों के होने के बावजूद, वर्तमान काल में दोनों राष्ट्र अपने सांस्कृतिक प्रतीकों एवं विशिष्टताओं के बारे में पूर्णतया अवगत नहीं हैं। गत दो सदियों में उभरी पश्चिमी सभ्यता ने भी दोनों राष्ट्रों की संस्कृतियों को प्रभावित किया है। नवीन टैक्नोलोजी से भी पारस्परिक सांस्कृतिक चिंतन विदारित हुआ है। परिणामस्वरूप आपस में उभरी सांस्कृतिक दूरियाँ निरंतर अग्रोन्मुख हैं। पाश्चात्य सभ्यता के विप्लव ने हमारी संस्कृतियों के प्राचीन एवं सुदृढ़ आधार को हिलाकर कला एवं संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में नए वातावरण को जन्म दिया है। इसके कारण पिछले दो शतकों में ये दोनों प्राचीन समग्र सभ्यताओं वाले राष्ट्रों में व्याप्त चिरकालीन द्विआयामी या बहुआयामी संवाद का स्थान पाश्चात्य सभ्यता के एकाधिकार ने बलपूर्वक ले लिया है।

यद्यपि लेखक का उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता के सकारात्मक तत्त्वों का विरोध एवं आलोचना करना तथा पाश्चात्य विज्ञान जगत की मानव प्रगति संबंधी उपलब्धियों की उपेक्षा करना नहीं है अपितु यहाँ चर्चा का संदर्भ उन पाश्चात्य संबंधी तत्त्वों से है जिनके कारण अपाश्चात्य अर्थात् पूर्वी सभ्यताओं का अपने ही राष्ट्रों में प्रभावहीन होने की ओर अग्रसर होना है। वस्तुतः पाश्चात्य सभ्यता के विप्लवकारी तथा असंगत तत्त्वों के सम्मुख स्थानीय संस्कृति निराश्रित एवं निस्सहाय सी नज़र आती है। फलस्वरूप यह संस्कृतियाँ नवीन असंगत तथा प्रभुत्वशाली तत्त्वों को विशिष्ट स्थान देने पर बाध्य हैं।

भारत तथा ईरान के प्राचीन एवं मधुर सांस्कृतिक संबंध भी इस नए विप्लवकारी वातावरण की चपेट में आने से नहीं बच पाए हैं। अंतिम दो शताब्दियों में नवीन वातावरण ने हमारे ऐतिहासिक सांस्कृतिक संबंधों को आहत किया है तथा दोनों संस्कृतियों में एक विशेष अंतर प्रगट हुआ है। जिससे दोनों संस्कृतियों में एक दूरी बन गई है। इसका मुख्य कारण विभिन्न सांस्कृतिक स्रोत संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का अभाव भी है। इस अभाव के कारण दोनों संस्कृतियाँ नवीन परिवर्तनों से अपरिचित एवं अबोध हैं तथा इस दूरी को समाप्त करने की दिशा में प्रयास भी नहीं हुआ है। यदि किया भी गया है तो अपर्याप्त है।

यद्यपि हमें उन विभूतियों के प्रति अवश्य आभार प्रकट करना चाहिए जिन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के विप्लवकारी वातावरण में भी पारस्परिक सांस्कृतिक संबंधों को अपनी रचनाओं, अनुवाद, व्याख्यान आदि माध्यमों से टिमटिमाते दीपक की भाँति प्रज्वलित रखने के लिए अथक प्रयास किया है।

उन्होंने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को आगामी नस्लों की रगों में प्रवाहित कर प्राचीन संबंधों की धारा को प्रवाहमान बनाया है। यहाँ उन सभी विभूतियों का नाम तो नहीं लिया जा सकता लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनके कार्यों ने उनके नाम को कालचक्र के पट पर स्थायी रूप से अलंकृत कर दिया है ताकि

आनेवाली नस्लें उनको याद रखें और उनके शुभकृत्यों के बदले ईश्वर उनको अच्छे फल दे।

हमने उपरोक्त शब्दों में यह कहा कि संसार में ऐसा नवीन सांस्कृतिक वातावरण बना है कि सभी सभ्यताओं ने स्थानीय संस्कृति को त्यागकर नई पाश्चात्य सभ्यता के सम्मुख समर्पण किया है। परिणामस्वरूप हम एक-दूसरे के सांस्कृतिक क्षेत्र में विभिन्न इकाइयों में हुए परिवर्तन से भी अवगत नहीं हैं। इस परिस्थिति का कारण स्वयं ही विशाल रूप धारण करता गया। ऐसी पुस्तकों एवं रचनाओं का अभाव है जिनमें समकालीन पारस्परिक संस्कृति की विभिन्न इकाइयों में घटित विकास एवं प्रगति का वर्णन हो तथा वह रचनाएँ विशेषतः दूसरे पक्ष के लिए लिखी गई हों अर्थात् हमारे देश में भारतीय संस्कृति संबंधी अनेक पुस्तकें, लेख एवं रचनाएँ उपलब्ध हैं लेकिन ऐसी सूचनाएँ प्रतिपक्ष को शायद ही पहुँच पाती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रयोजन से लिखी गई है। वर्तमान ईरानी संस्कृति से संबंधित विभिन्न विषयों पर आधारित यह रचना विशेष रूप से प्रिय भारतवासियों के लिए संकलित एवं संपादित की गई है। इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें संस्कृति के स्तंभों के विभिन्न आयामों को संतुलित विवरण के साथ हिंदी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

फ़ारसी भाषा में लिखित इस रचना के मूल पाठ का अनुवाद एवं संपादन कार्य दिल्ली विश्वविद्यालय के फ़ारसी विभाग में कार्यरत सहआचार्य डॉ. चंद्रशेखर द्वारा संपन्न हुआ है। इस उत्कृष्ट कार्य के लिए हम उनके आभारी एवं कृतज्ञ हैं।

वह उन सभी विवेकी एवं माननीय बुद्धिजीवियों में से हैं जो हमारे दोनों राष्ट्रों के सांस्कृतिक संबंधों के मध्य प्रज्वलित दीपक की भाँति हैं। इस सफल प्रयास के लिए हम उनके अति आभारी हैं। इसलामी गणतंत्र ईरान का यह सांस्कृतिक केंद्र इस रचना के संबंध में सभी प्रकार के सुझावों का स्वागत करता है। आशा है ऐसे सभी प्रस्ताव इस पुस्तक के भावी संस्करणों में उचित स्थान प्राप्त करेंगे।

नयी दिल्ली
जून, 2002

ईसा रिज़ा ज़ादेह
सांस्कृतिक सलाहकार
सांस्कृतिक केंद्र
इसलामी गणतंत्र ईरान

दो शब्द

ईरान और भारत भौगोलिक दृष्टि से भिन्न राष्ट्र हैं। परंतु मूलतः आर्य-जाति की शाखाओं से संबंधित होने के कारण सांस्कृतिक रूप से दोनों राष्ट्रों में कई प्रकार से समानता झलकती है। इस संदर्भ में हिंदी-भाषी पाठकों, विद्यार्थियों तथा शोधकर्त्ताओं को ईरान के बारे में सीधी जानकारी के लिए पाठ्य सामग्री प्रचुरता से उपलब्ध नहीं है। इस कमी को यथासंभव पूरा करने के उद्देश्य से ईरान कल्चर हाउस, नयी दिल्ली के सांस्कृतिक सलाहकार आदरणीय श्रीमान् ईसा रिज़ा ज़ादेह् तथा निदेशक श्रीमान् मुहम्मद हसन मुज़फ़्फ़री के अनुरोध तथा निरंतर प्रोत्साहन से फ़ारसी में श्री अब्बास नामजू द्वारा संकलित एवं संपादित पुस्तक 'सीमाए-फ़रहंगीए-ईरान' को हिंदी में प्रकाशित करने का कार्य प्रारंभ किया गया।

यह पुस्तक प्रसिद्ध ईरानी विद्वानों द्वारा लिखित फ़ारसी लेखों का एक महत्त्वपूर्ण संकलन है जिनमें ईरान के भूगोल, राजनीति, इतिहास, साहित्य, धर्म एवं मत, संगीत, नाट्यकला, हस्तकला एवं ललित कला, ईरान के संग्रहालय, पांडुलिपि एवं लिपि-विज्ञान, मानव-विज्ञान, पर्यटन आदि विषयों की प्राचीन से अर्वाचीन कालीन अनुपम तथा प्रत्यक्ष जानकारी भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। प्रस्तुत कृति इसी पुस्तक का हिंदी रूपांतर है। पाठकों की रोचकता को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के शब्दशः अनुवाद का परिहार किया गया है तथा केवल संपादित सामग्री को अन्य स्रोतों से संकलित सामग्री के साथ मिलाकर प्रस्तुत किया गया है। विशेषतः फ़ारसी साहित्य के लेख में फ़ारसी की अन्य पुस्तकों तथा शोधग्रंथों से एकत्रित जानकारी का उपयोग किया गया है।

भारत-ईरान संबंध तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के प्रति समर्पण तथा अगाध प्रेम को श्रद्धेय श्रीमान् ईसा रिज़ा ज़ादेह् ने प्रस्तुत पुस्तक के प्राक्कथन द्वारा अभिव्यक्त किया है। वास्तव में उनके संरक्षण तथा उनकी पत्नी श्रीमती नाज़िर ज़ादेह् किरमानी और ईरान कल्चर हाउस के निदेशक श्री मुहम्मद हसन मुज़फ़्फ़री के दिशा निर्देशन तथा सहयोग द्वारा ही इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका है। इसके लिए हम उनके हार्दिक आभारी हैं।

इस पुस्तक के अनुवाद कार्य में विशिष्ट मित्रगण श्री सैयद मेहदी हसन हुसैनी, डा. राजेन्द्र कुमार एवं श्री विनय कुमार का विशेष सहयोग सराहनीय है। पुस्तक सज्जा और चित्र सज्जा का

कार्य अकरम परवेज़ तथा पायनियर टेलीकॉम एवं पांडुलिपि-कंप्यूटरीकरण श्री अकरम परवेज़ तथा श्री गोपाल जोशी के अथक प्रयास से ही समय पर पूरा हो सका। सांस्कृतिक केंद्र, इसलामी गणतंत्र ईरान, नयी दिल्ली, में कार्यरत श्री अहमदी तथा सुश्री आयशा द्वारा पुस्तकावरण कार्य संपन्न किया गया है। इस सराहनीय कार्य के लिए सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस प्रकार के कार्य के प्रस्तुतीकरण, अनुवाद, भाषा तथा विषयवस्तु के संबंध में कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं जिनका पूर्णतः निवारण संभव नहीं है। हम इसका पूर्ण उत्तरदायित्व वहन करते हैं। आशा है कि पाठकगण इन त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर इस पुस्तक के आगामी संस्करण को और अधिक उन्नत करने में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग देकर हमें अनुगृहीत करेंगे।

नयी दिल्ली
जून, 2002

चंद्रशेखर
मधुकर तिवारी

अनुक्रम

प्राक्कथन	vii
दो शब्द	xi
भौगोलिक एवं राजनीतिक ईरान / अहमदपुर अहमद	1
ईरान का संक्षिप्त इतिहास / अब्दुर्रसूल ख़ैर अंदेश एवं ग़ुलाम हुसैन ज़रगरी निज़ाद	7
ईरान के धर्म एवं मत / मसऊद गुलिस्तान हबीबी एवं मुहम्मद रजबी	29
ईरानी समाज / नेमतउल्लाह फ़ज़ीली	39
ईरान के प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक / सैयद महमूद मूसवी	48
फ़ारसी साहित्य का संक्षिप्त परिचय / चंद्रशेखर	61
ईरान में पांडुलिपि लेखन एवं अलंकरण / करीमियान सरदशती	80
नाट्यकला / फ़रहाद नाज़िर ज़ादेह किरमानी	93
ईरानी संगीत का संक्षिप्त परिचय / मजीद कियानी	110
ईरान में शिक्षा का इतिहास / नासिर पाशुक़ी	117
ईरान के राष्ट्रीय संग्रहालय / मुहम्मद तक़ी रहनुमाई	125
पर्यटन स्थलों की भूमि : ईरान / हुसैन यावरी	128
ईरान की विभिन्न कलाएँ / ग़ुलाम अली हातिम	136
चित्र-सूची	161

भौगोलिक एवं राजनीतिक ईरान

ऐतिहासिक घटनाक्रमों के चक्रव्यूह तथा राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक उतार-चढ़ाव के उपरांत वर्तमान ईरान का कुल क्षेत्रफल 16,48,195 वर्ग कि.मी. है जो कि एशिया का 1/26 तथा संसार के कुल शुष्क क्षेत्र का 1/90 भाग है। इसके दक्षिणी भाग के अंतिम छोर पर ग्वाटर बंदरगाह तथा उत्तरी भाग में आरादत घाटी है। पूर्वी छोर पर पाकिस्तान की सीमा के निकट 'कूहक' पहाड़ की शृंखला एवं पश्चिमी सीमा पर तुर्की की सीमा से सटा हुआ क्षेत्र 'बाज़रगान' है। पूर्व से पश्चिम तक के क्षेत्र में समय का अंतर लगभग एक घंटा अठारह मिनट है। वर्तमान ईरान की भौगोलिक परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है :

पहाड़ी क्षेत्र–ईरान वस्तुतः एक विशाल पठार है जिसका आधे से अधिक क्षेत्र ऊँचे पहाड़ों से ढका हुआ है। प्रमुख चोटियों में तेहरान के उत्तर पूर्व में स्थित दमावंद (5671 मी.); अर्दबील के पश्चिमी छोर पर सबरान चोटी (4880 मी.); तेहरान के उत्तर-पश्चिम में तख़्ते-सुलेमान; तुकबान के दक्षिण में 4820 मी. ऊँची चोटी; बख़्तियारी की ज़र्द कूह (4301 मी.); ज़ाहेदान के दक्षिण में स्थित तफ़्तान (2042 मी.) प्रमुख चोटियों में से हैं। उत्तर-पूर्वी ईरान में ख़ुरासान के पर्वत ईरान की पर्वत शृंखलाओं

ईरान का पहाड़ी क्षेत्र

का एक विशिष्ट भाग हैं। इसका विस्तार शाह कूह से आरंभ होकर उत्तर पश्चिम से आगे बढ़कर दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित अफ़ग़ानिस्तान के हिंदूकुश पर्वत तक पहुँचता है।

कवीरे-लूत

समुद्र तटीय मैदानी क्षेत्र, पर्वत एवं समुद्री किनारों का निकट एवं लंबा भौगोलिक क्षेत्र ईरान के दर्शनीय क्षेत्रों में से है। ये मनोरम स्थल कैस्पियन समुद्र के दक्षिणी छोर से अलबुर्ज की उत्तरी शृंखला तक है। यह क्षेत्र लंबाई में लगभग 500 कि.मी. है जिसमें समुद्री तट तथा पहाड़ की घाटियों का सुंदर मिलन दर्शनीय है। कैस्पियन समुद्र के साथ संलग्न यह क्षेत्र घने हरे-भरे जंगलों एवं कृषि योग्य भूमि से युक्त है। पर्यटन के लिए यह क्षेत्र सबसे अधिक प्रसिद्ध है। प्राकृतिक सुंदरता का यहाँ आश्चर्यजनक नज़ारा दिखाई देता है। इसी प्रकार ईरान के दक्षिणी किनारों का 1480 वर्ग कि.मी. का मैदानी क्षेत्र अरब महासागर तथा खलीजे-फ़ारस क्षेत्र से संलग्न है। ईरानी पठारों के मध्य दो मुख्य रेगिस्तान हैं—लूत और नमक।

ईरान का लगभग 3,20,000 वर्ग कि.मी. विशाल पठारी भाग, जिसे पहाड़ों की विभिन्न शृंखलाओं ने घेर रखा है, लवण युक्त है। इसके उत्तरी क्षेत्र को कवीरे-नमक (नमक का रेगिस्तान) तथा दक्षिणी क्षेत्र को कवीरे-लूत (लूत रेगिस्तान) कहते हैं।

कवीरे-नमक—पूर्व से पश्चिम 600 कि.मी. तथा उत्तर से दक्षिण 300 कि.मी. विस्तृत क्षेत्र में अलबुर्ज की पहाड़ियाँ, ख़ुरासान, सीस्तान, क़ुम, काशान, यज़्द आदि नगर स्थित हैं। इसका अधिकांश भाग रेतीला तथा कुछ पथरीला है। यहाँ चलने वाले अंधड़ अनेक टीलों को क्षणिक जन्म देते हैं जो गतिशील टीलों के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह क्षेत्र ईरान के अति शुष्क क्षेत्रों में गिना जाता है।

कवीरे-लूत—दक्षिण-पूर्वी ईरान में स्थित कवीरे-लूत लगभग 80,000 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ विशाल क्षेत्र है। यहाँ का असमतल क्षेत्र तीन भागों में विभाजित किया जाता है : उत्तरी क्षेत्र, दक्षिणी क्षेत्र एवं मध्य क्षेत्र, जो इन दोनों से बड़ा है। यहाँ की अनुपजाऊ शुष्क भूमि का लगभग 2,00,150 वर्ग कि.मी. क्षेत्र निर्जन है। यहाँ जीवनयापन का कोई अन्य साधन भी उपलब्ध नहीं है।

जलवायु—सामान्यतः ईरान की जलवायु शुष्क है। समुद्र तटीय अलबुर्ज एवं ज़ागरूस पर्वत शृंखलाओं के कारण ईरान के आंतरिक भाग की जलवायु बिल्कुल शुष्क है लेकिन इन्हीं शृंखलाओं तथा रेगिस्तानी क्षेत्रों के कारण यहाँ

के क्षेत्रों की जलवायु भिन्न-भिन्न है। उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर औसत वार्षिक तापमान 10 डि.सें. (आज़रबाईजान) से बढ़कर दक्षिण की ओर 30 डि.सें. तक है। अतः ईरान के पहाड़ी क्षेत्रों में शीतकालीन खेलों के आनंद से लेकर समुद्र तटीय क्षेत्रों में सूर्य स्नान तक का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

नदियाँ–ईरान में दो प्रकार की नदियाँ हैं : बारहमासी एवं बरसाती। यह नदियाँ कैस्पियन सागर, फ़ारस-खाड़ी तथा अरब सागर एवं आंतरिक भागों में वर्षा की औसत पर निर्भर हैं।

वर्षा एवं भूमिगत नहरें–ईरान में औसत वर्षा 250-300 मि.मी. है। इसी कारण यहाँ भूमिगत नहरों के निर्माण का प्रचलन प्राचीन काल से है। इन भूमिगत नहरों के पानी को पीने तथा कृषि, दोनों के लिए प्रयोग किया जाता है। संभवतः भूमिगत नहर निर्माण कार्य की स्थापत्य कला ईरानी सभ्यता की अन्य सभ्यताओं को देन है।

समुद्र–ईरान तीन सागरों से जुड़ा हुआ है : फ़ारस-खाड़ी, ओमान सागर एवं कैस्पियन सागर।

फ़ारस-खाड़ी–इसका (2,32,850 वर्ग कि.मी.) विशाल समुद्र तट ईरान के दक्षिण एवं मध्य भाग तथा अरब द्वीपों को जोड़ता है। यह खाड़ी हरमुज़ जलडमरू मध्य द्वारा ओमान महासागर से जा मिलती है। उत्तर-पश्चिम में अरूद नदी के मुहाने से दक्षिण-पूर्व में स्थित हरमुज़ जलडमरू मध्य तक का क्षेत्र 805 कि.मी. लंबा तथा 256-88 कि.मी. चौड़ा है तथा इसकी अधिकतम गहराई 182 मी. है। इसके उत्तर-पश्चिम में कुवैत तथा ईराक़ देश स्थित हैं। इसके तटीय शैवाल क्षेत्र में मोतियों एवं तेल का विशाल भंडार है जिसके कारण यह क्षेत्र व्यापारिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त फ़ारस खाड़ी क्षेत्र सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह खाड़ी हरमुज़ खाड़ी तथा हिंद महासागर द्वारा ईरान को सभी प्रमुख महासागरों से जोड़ती है। ईरान से संलग्न इस खाड़ी का दक्षिणी भाग मछली व्यापार के लिए प्रसिद्ध है जो ईरान के आर्थिक विकास में, तेल व्यापार के अतिरिक्त, विशेष महत्त्व रखता है।

ओमान सागर–हिंद महासागर के दक्षिण पश्चिमी एशिया की ओर बढ़े हुए भाग को ओमान खाड़ी या ओमान सागर कहा जाता है। इसके तीन ओर शुष्क क्षेत्र तथा एक ओर स्वतंत्र सागर क्षेत्र है। इसके उत्तरी भाग में ईरान एवं पाकिस्तान स्थित हैं इसका दक्षिणी भाग हिंद महासागर से जा मिलता है। ईरान का दक्षिण तटीय क्षेत्र हरमुज़ जलडमरू मध्य से लेकर ग्वाटर बंदरगाह तक फैला हुआ है। ग्वाटर बंदरगाह के अतिरिक्त अन्य बंदरगाहों में जासक एवं चाह बहार

हरमुज़ द्वीप

के क्षेत्रों की जलवायु भिन्न-भिन्न है। उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर औसत वार्षिक तापमान 10 डि.सें. (आज़रबाईजान) से बढ़कर दक्षिण की ओर 30 डि.सें. तक है। अतः ईरान के पहाड़ी क्षेत्रों में शीतकालीन खेलों के आनंद से लेकर समुद्र तटीय क्षेत्रों में सूर्य स्नान तक का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

नदियाँ–ईरान में दो प्रकार की नदियाँ हैं : बारहमासी एवं बरसाती। यह नदियाँ कैस्पियन सागर, फ़ारस-खाड़ी तथा अरब सागर एवं आंतरिक भागों में वर्षा की औसत पर निर्भर हैं।

वर्षा एवं भूमिगत नहरें–ईरान में औसत वर्षा 250-300 मि.मी. है। इसी कारण यहाँ भूमिगत नहरों के निर्माण का प्रचलन प्राचीन काल से है। इन भूमिगत नहरों के पानी को पीने तथा कृषि, दोनों के लिए प्रयोग किया जाता है। संभवतः भूमिगत नहर निर्माण कार्य की स्थापत्य कला ईरानी सभ्यता की अन्य सभ्यताओं को देन है।

समुद्र–ईरान तीन सागरों से जुड़ा हुआ है : फ़ारस-खाड़ी, ओमान सागर एवं कैस्पियन सागर।

फ़ारस-खाड़ी–इसका (2,32,850 वर्ग कि.मी.) विशाल समुद्र तट ईरान के दक्षिण एवं मध्य भाग तथा अरब द्वीपों को जोड़ता है। यह खाड़ी हरमुज़ जलडमरू मध्य द्वारा ओमान महासागर से जा मिलती है। उत्तर-पश्चिम में अरूद नदी के मुहाने से दक्षिण-पूर्व में स्थित हरमुज़ जलडमरू मध्य तक का क्षेत्र 805 कि.मी. लंबा तथा 256-88 कि.मी. चौड़ा है तथा इसकी अधिकतम गहराई 182 मी. है। इसके उत्तर-पश्चिम में कुवैत तथा ईराक़ देश स्थित हैं। इसके तटीय शैवाल क्षेत्र में मोतियों एवं तेल का विशाल भंडार है जिसके कारण यह क्षेत्र व्यापारिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त फ़ारस खाड़ी क्षेत्र सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह खाड़ी हरमुज़ खाड़ी तथा हिंद महासागर द्वारा ईरान को सभी प्रमुख महासागरों से जोड़ती है। ईरान से संलग्न इस खाड़ी का दक्षिणी भाग मछली व्यापार के लिए प्रसिद्ध है जो ईरान के आर्थिक विकास में, तेल व्यापार के अतिरिक्त, विशेष महत्त्व रखता है।

ओमान सागर–हिंद महासागर के दक्षिण पश्चिमी एशिया की ओर बढ़े हुए भाग को ओमान खाड़ी या ओमान सागर कहा जाता है। इसके तीन ओर शुष्क क्षेत्र तथा एक ओर स्वतंत्र सागर क्षेत्र है। इसके उत्तरी भाग में ईरान एवं पाकिस्तान स्थित हैं इसका दक्षिणी भाग हिंद महासागर से जा मिलता है। ईरान का दक्षिण तटीय क्षेत्र हरमुज़ जलडमरू मध्य से लेकर ग्वाटर बंदरगाह तक फैला हुआ है। ग्वाटर बंदरगाह के अतिरिक्त अन्य बंदरगाहों में जासक एवं चाह बहार

हरमुज़ द्वीप

भी इसी खाड़ी पर स्थित हैं।

कैस्पियन सागर–यह सागर ईरान, तुर्कमेनिस्तान, क़ज़ाक़िस्तान, रूस तथा आज़रबाईजान देशों के साथ लगता है। आस्तारा से अतर्क नदी तक इस समुद्र का 922 कि.मी. लंबा ईरान के उत्तरी भाग का प्रमुख क्षेत्र है। इसके साथ-साथ हरे-भरे पहाड़ी एवं समुद्र तटीय मैदान पर्यटकों के मुख्य आकर्षण केंद्र हैं। आर्थिक दृष्टि से भी यह क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है तथा इस तट की मछलियों (विशेषतः ओज़नबरून) से प्राप्त कैवियर विश्व प्रसिद्ध खाद्य है। इसका वार्षिक निर्यात लगभग 300 टन है। इसी कारण उत्तरी क्षेत्र का कृषि क्षेत्र उन्नत तथा विकसित है। इन समुद्र तटीय क्षेत्रों से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण द्वीप निम्नलिखित हैं :

हरमुज़ द्वीप–यह अंडाकार द्वीप लगभग 6000 वर्ग मी. के क्षेत्र में सीमित है। व्यापारिक एवं सैन्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण यह द्वीप हरमुज़ जलडमरू मध्य के साथ संलग्न है। इस पर सर्वप्रथम पुर्तगाली कमांडर अलबुकर्क ने सन् 1507 ई. में क़ब्ज़ा कर इसे सैन्य गतिविधि के लिए उपयोगी बनाया था। इस द्वीप के सामरिक महत्त्व के कारण फ़ारस खाड़ी पर सन् 1622 ई. तक पुर्तगालियों का वर्चस्व रहा। आज भी इस द्वीप के उत्तरी भाग में पुर्तगालियों के क़िलों के खंडहर विद्यमान हैं।

ख़ारक द्वीप–लगभग 10 कि.मी. लंबा तथा 5 कि.मी. चौड़ा यह द्वीप फ़ारस खाड़ी का शैल क्षेत्र है। यह बू शहर बंदरगाह के उत्तर में लगभग 65 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। प्राकृतिक दृष्टि से जहाज़ का लंगर डालने तथा समुद्री क्षेत्रों से तेल निकालने के लिए यह द्वीप ईरान के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस द्वीप के मध्य बनी प्राकृतिक पहाड़ियां जहाज़ों को समुद्री तूफ़ान से सुरक्षित रखती हैं। अनेक वर्षों से इस द्वीप का उपयोग सुरक्षित बंदरगाह के रूप में होता रहा है।

किश्म द्वीप–फ़ारस-खाड़ी के अन्य द्वीपों की अपेक्षा घनी आबादी वाला यह द्वीप हरमुज़ जलडमरू मध्य में स्थित है। इसके तट जहाज़ का लंगर डालने के लिए उचित स्थान हैं। इसके किनारों पर चूने के पहाड़ तथा आंतरिक क्षेत्र में हरे-भरे मैदान कृषि के लिए उपयोगी हैं। खजूर के लिए यह द्वीप विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

कीश द्वीप–85 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ यह द्वीप खजूर उत्पादन के अतिरिक्त कर-मुक्त व्यापारिक केंद्र होने के कारण बहुत प्रसिद्ध है। पर्यटकों एवं व्यापारियों के लिए यह आकर्षण का मुख्य केंद्र है। उपरोक्त द्वीपों के अतिरिक्त अन्य द्वीपों में हिंगाम, लारक, लावान, तुंबे-कूचक एवं तुंबे-बुज़ुर्ग, अबू मूसा एवं हिंदूराबी भी उल्लेखनीय हैं।

सीमा क्षेत्र–ईरान की सीमा का 6000 कि.मी. शुष्क क्षेत्र पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, आज़रबाईजान, अर्मेनिस्तान, तुर्की एवं ईराक़ के साथ मिलता है। तटीय सीमा को मिलाकर कुल सीमा क्षेत्र 8700 कि.मी. है। ईरान की सीमा का अधिकांश भाग ईराक़ से मिला हुआ है।

जनसंख्या–1996 की जनसंख्या के आँकड़ों के अनुसार ईरान की जनसंख्या लगभग 60.05 मिलियन है। इसमें से 61.3 प्रतिशत शहरी तथा 38.3 प्रतिशत ग्रामवासी एवं शेष अनिवासी हैं।

कृषि–प्राकृतिक जलस्रोतों के अभाव के कारण ईरान के अनेक क्षेत्र कृषि योग्य नहीं हैं। कृषि योग्य भूमि का केवल 31 प्रतिशत भाग अर्थात् 51 मिलियन हैक्टेअर भूमि ही उपजाऊ है। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के अनाज

एवं खाद्य पदार्थों का उत्पादन किया जाता है जिसमें धान उत्पादन मुख्यतः उत्तरी कृषि क्षेत्र में किया जाता है। आधुनिक कृषि-शोध द्वारा अकृष्य भूमि को कृष्य बनाने के प्रयास जारी हैं।

ऊर्जा स्रोत (प्राकृतिक गैस)–विश्व का लगभग 12 प्रतिशत प्राकृतिक गैस भंडार ईरान में होने के कारण इसे विश्व में दूसरा तथा मध्य पूर्व में प्रथम स्थान प्राप्त है। ईरान में प्राकृतिक गैस दो प्रकार से प्राप्त होती है : (क) खनिज तेल निष्कासन के साथ, तथा (ख) प्राकृतिक गैस के स्वतंत्र भूमिगत भंडारों से। ईरान में लगभग 15 ट्रिलियन घन मीटर प्राकृतिक गैस के भंडार विद्यमान हैं तथा प्रत्येक वर्ष नए-नए प्राकृतिक भंडारों का पता चलता रहता है। गैस रिफ़ाइनरी में शोधन उपरांत इस प्राकृतिक संपदा की आपूर्ति घरेलू एवं औद्योगिक कार्यों के लिए पाइप लाइन द्वारा की जाती है। गत वर्षों से इसके निर्यात संबंधी कार्यों पर भी विचार-विमर्श जारी है।

खनिज तेल–ईरान तेल उत्पादक देशों में (सऊदी अरब के बाद) द्वितीय स्थान पर है। यहाँ तेल के प्राकृतिक भंडार दो भागों में हैं : (1) दक्षिणी ईरान के ख़ुज़िस्तान तथा फ़ारस-खाड़ी क्षेत्र का समुद्र तटीय भाग, तथा (2) पश्चिमी ईरान में किरमान शाह तथा नफ़्त (तेल) शहर का सीमावर्ती भाग।

खनिज पदार्थ–ईरान में पाए जाने वाले विभिन्न खनिज पदार्थों में लौह, तांबा, चूना, ज़िंक, पारा तथा बहुमूल्य पत्थरों के विपुल भंडार हैं। इसी प्रकार पर्वत क्षेत्र की संपदा में बॉक्साइट, मैगनीज़, माइका, क्रोमाइट यूरेनियम तथा अन्य प्रकार के मूल्यवान पत्थर एवं खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

प्रांत–सन् 1998 ई. के आँकड़ों के अनुसार ईरान में कुल प्रांतों की संख्या 28 है तथा इनमें 283 ज़िले, 741 तहसील, 716 नगर तथा 2258 ग्राम सभा क्षेत्र एवं 68125 विभिन्न आबादियों के क्षेत्र हैं। ईरान के प्रांत निम्नलिखित हैं : पूर्वी आज़रबाईजान, पश्चिमी आज़रबाईजान, अर्दबील, इस्फ़ाहान, ईलाम, बू शहर, तेहरान, चहार महाल एवं बख़्तियारी, खुरासान, ख़ुज़िस्तान, ज़नजान, समनान, सीस्तान एवं बिलोचिस्तान, फ़ारस, क़ज़वीन, क़ुम, कुर्दिस्तान, किरमान, किरमान शाह, कहगीलूइए एवं बवीर अहमद, गुलिस्तान, गीलान, लूरिस्तान, माज़िंदरान, मरकज़ी (मध्य प्रांत), हरमुज़गान, हमादान और यज़्द।

राजधानी–ईरान की राजधानी तेहरान की जनसंख्या लगभग 70 लाख है। यह महानगर राजनीतिक, राजकीय, औद्योगिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र है। तेहरान एक प्रांत भी है जिसकी कुल जनसंख्या लगभग एक करोड़ है। यह सबसे घनी आबादी वाला प्रांत है। तेहरान शहर आधुनिक ईरान का सबसे उत्तम एवं सर्वश्रेष्ट महानगर है। ईरान के उत्तर में अलबुर्ज पहाड़ियों के दामन में बसा यह विशाल नगर प्रत्येक प्रकार की गतिविधियों का मुख्य केंद्र है। पर्यटन स्थल, शिक्षा केंद्र, राजकीय संस्थान, पुराने महल, प्रधान पुस्तकालय, पार्क आदि दर्शनीय स्थलों की यह नगरी स्वयं एक विशाल देश जान पड़ती है। इसका कुल क्षेत्रफल 1500 वर्ग कि.मी. है।

अन्य मुख्य नगरों में इस्फ़ाहान, शीराज़, मशहद, क़ज़वीन, तबरीज़, काशान, क़ुम, हमादान, ज़नजान, शूश एवं बंदराब्बास आदि हैं।

राजनीतिक व्यवस्था–वर्तमान इसलामी गणतंत्र का प्रारूप इसलामी सिद्धांतों एवं मूल्यों पर आधारित है तथा सरकार के मार्गदर्शन के लिए इसलामी न्याय शास्त्र के प्रमुख विद्वान जिन्हें 'रहबर' कहा जाता है, मनोनीत किए जाते हैं।

ईरान के इसलामी गणतंत्र के निम्नलिखित अंग हैं :

वैधानिक शक्ति–विधि निर्धारण का कार्य संसद के दो प्रमुख सदन करते हैं :

(क) मजलिसे-शौराए-इसलामी–संसद के इस सदन में जनता द्वारा चुने गए 270 प्रतिनिधि हैं। प्रत्येक दस वर्ष बाद इसकी संख्या में 20 प्रतिनिधियों की वृद्धि होगी। चुनाव प्रत्येक चार वर्ष उपरांत होता है। संसद का यह अंग विभिन्न कमीशन, सरकारी इकाई तथा कोष्ठ की सहायता से कार्य संचालन करता है।

(ख) शौराए-निगहबान–इसलामी सिद्धांतों एवं नियमों की पृष्ठभूमि में निर्मित विधान की उचित समीक्षा के लिए शौराए-निगहबान, एक उच्चतर सदन है। मजलिसे-शौराए-इसलामी द्वारा बनाए गए क़ानूनों को अंतिम स्वीकृति इसी सदन की सम्मति पर निर्भर है।

इस सदन के बारह सदस्य हैं। प्रमुख इसलामी न्यायशास्त्री एवं न्यायविद् छः सदस्य रहबर द्वारा मनोनीत किए जाते हैं तथा अन्य छः न्यायविद् सदस्यों का नामांकन राष्ट्रपति तथा मजलिसे-शौराए-इसलामी द्वारा स्वीकृत होने पर किया जाता है।

कार्यकारी शक्ति : वैधानिक शक्तियों द्वारा स्वीकृत एवं पारित नियमों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व सरकारी तंत्र पर निर्भर है। सैन्य शक्तियों (जिनका प्रमुख अध्यक्ष स्वयं रहबर होता है) के कार्यों के अतिरिक्त सभी कार्यों का स्वतंत्र प्रभार राष्ट्रपति एवं उसके मंत्रिमंडल के पास होता है। राष्ट्रपति का चुनाव भी प्रत्येक चार वर्ष उपरांत सीधे जनता के मत द्वारा होता है।

न्यायिक शक्ति–इसका गठन वैयक्तिक एवं सामाजिक अधिकारों के संरक्षण तथा न्याय करने के लिए किया गया है।

ईरान का संक्षिप्त इतिहास

इसलाम पूर्व काल

ईरान का राजनीतिक इतिहास प्रायः दो युगों में विभाजित किया जाता है : (क) इसलाम पूर्व काल, तथा (ख) इसलामोत्तर काल। सन् 652 ई. में अरब इसलामी सेनाओं ने अंतिम सासानी शासक यज़्दगुर्द तृतीय को पराजित कर दिया तथा उसका वध करके सासानी वंश का अंत कर दिया। अतः सासानी वंश के पतन को ईरान में इसलाम पूर्व काल का समापन एवं इसलामोत्तर काल का उदय माना जाता है। ईरान के इतिहास लेखन की दो विधियाँ हैं। पहली विधि पारंपरिक प्रचलित लोक कथाओं पर आधारित है जिसके अनुसार प्राचीन ईरानी इतिहास को प्रमुख चार शासनकालों में विभाजित किया गया है—(1) पीशदादी, (2) कियानी, (3) अशकानी और (4) सासानी। दूसरी विधि आधुनिक इतिहास लेखन पर आधारित है जिसमें पाँच शासनकालों का उल्लेख है—(1) माद, (2) हिख़ामंशी, (3) सैल्युकी, (4) अशकानी और (5) सासानी।

उल्लिखित दोनों विधियों के लिखित एवं मौखिक अपने-अपने ऐतिहासिक स्रोत हैं जो आवश्यक वैज्ञानिक तथा आलोचनात्मक तथ्यों से युक्त हैं। अतः ईरानी इतिहास की दोनों विधियों में वर्णित शासनकालों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है :

पीशदादी वंश

पौराणिक कथाओं के अनुसार पीशदादी वंश क़ानून, परंपरा एवं रीति-रिवाज, कला, जीवन एवं कार्य-शैली, संस्कृति, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र का संस्थापक माना जाता है। लोक-कथाओं के अनुसार क्यूमर्स से मनूचहर तक सभी विश्व-शासक थे तथा प्रत्येक ने मानव समाज में नवीन कला आयाम और कार्य क्षेत्रों को जनाधार प्रदान किया। ईरानी सांस्कृतिक इतिहास लेखकों के मतानुसार इस काल के शासक होशंग को अग्नि का आविष्कारक तथा लौह-ढलाई कार्य और जश्ने-सदे का पथ-प्रदर्शक माना जाता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध सम्राट जमशीद (जमशेद) ने लोगों को कपड़ा बुनने की कला तथा गृह-निर्माण कार्य की शिक्षा प्रदान की। ख़ुशियों से भरा त्योहार 'नौरोज़' भी इसी बादशाह की देन है।

इसी वंश के शासन काल में ज़हाक जैसे अत्याचारी शासक का उदय हुआ। कहा जाता है कि उसके दोनों कंधों पर साँपों का निवास था जो हर दिन एक व्यक्ति के भेजे का भोजन करते थे। इसके विरुद्ध फ़रीदूं लुहार

सबसे प्रमुख शहर शूश (शूशे-दनियाल) था। इस सभ्यता का उदय मैसोपोटेमिया की सभ्यता के समकालीन था। ईलामियों की लेखन लिपि कीलाक्षर थी जो संभवतः ईरान में सर्वप्रथम उन्हीं के द्वारा प्रचलित की गई। ईलामोत्तर काल में भी इस लिपि का व्यापक रूप से प्रयोग होता रहा। कुछ समय बाद प्रवासी आर्य ईलामियों के पड़ोसी बने तथा उन्होंने ईलामियों से बहुत कुछ सीखा। ईलामी वंश के क्षीण होते ही पश्चिमी सीमा पर बसे आशूरियों ने ईलामी राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। लेकिन इस पतन के कारण ईलामी सभ्यता पूर्णतः नष्ट नहीं हुई।

ईरान में आर्य जाति का आगमन

आर्य जाति का उद्गम स्थल यूरोप-एशिया का खड़ा ढालू क्षेत्र है। 'भारत-यूरोपीय' के नाम से प्रसिद्ध यह जाति विभिन्न भौगोलिक तथा खाद्य समस्याओं के कारण अपने मूल निवास स्थान से चलकर दो भागों में विभक्त हुई। इसका एक भाग पश्चिमी यूरोप में जा बसा जिसने यूनान और रोम को आवासित किया। दूसरा भाग दक्षिण की ओर बसा जिसका आखिरी पड़ाव भारत और ईरान बना। इसलिए इसको 'भारत-ईरानी' आर्य जाति वर्ग कहा जाता है। 'आर्य' अर्थात् स्वतंत्र, वीर, कुलीन एवं अभिजात्य जाति, जो कि कृषि, पशुपालन तथा घुड़सवारी में सर्वोत्तम थी, सर्वप्रथम तत्कालीन 'ईरानविज' अथवा 'ईरानविच' क्षेत्र में आवासित हुई। इन्हीं में से एक वर्ग भारत की ओर कूच कर गया और वहाँ जा बसा। ईरान में रह जाने वाले 'ईरानी' कहलाए। शनैः-शनैः अपने से पूर्व आवासित जातियों के साथ इन्होंने समन्वय स्थापित कर लिया तथा विभिन्न पारिवारिक वर्गों के रूप में आर्य एक विशाल क्षेत्र में फैल गए। प्रत्येक क्षेत्र ने एक राज्य क्षेत्र का रूप धारण कर लिया। परिणामस्वरूप उत्तर पश्चिम में माद, दक्षिण में पारस और उत्तर पूर्वी भाग में पारत आर्य जाति का वर्चस्व स्थापित हुआ। इन्होंने विभिन्न भौगोलिक एवं अनार्य संस्कृतियों में स्वयं को विलय कर लिया लेकिन सभी ने अपना मूल आर्य सांस्कृतिक रूप विद्यमान रखा।

माद वंश

ईरान के पश्चिमी भाग में स्थित पर्वत शृंखला माद वंश के शासकों का राज्य क्षेत्र था। इसका पड़ोसी क्षेत्र मैसोपोटेमिया सभ्यता का केंद्र था जिसका पश्चिमी भाग एक हज़ार वर्ष ई. पू. में आशूरी शासकों के नियंत्रण में था तथा दक्षिण में कल्दा अर्थात् बेबीलोनिया की राज्य सीमा थी। खनिज तथा दास व्यापार पर नियंत्रण पाने के लिए आशूरी शासक प्रायः पश्चिमी ईरान पर आक्रमण करते रहते थे। सुरक्षा के लिए पश्चिमी ईरान के विभिन्न क़बीलों ने 'मानना' संघटन की स्थापना की। इनके सलाहकार को हियाको कहा जाता था। कुछ वर्षों बाद इसी सलाहकार ने स्वयं को राजा घोषित कर 709 वर्ष ई. पू. में 'माद' राज्यवंश की स्थापना की। अन्य छोटे क़बीले, जैसे पारस भी इसी राज्य में विलय हो गए। अपना प्रभुत्व पश्चिमी ईरान में बढ़ाने के लिए आशूरियों की भाँति सक्का वंश के शासक भी प्रायः माद राज्य पर आक्रमण करते रहते थे। माद वंश के तीसरे राजा तथा हियाको के पौत्र हुओख़श्तरा का राज्य काल प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति एवं विकास की चरम सीमा पर था। उसने आशूरी और सक्का शासकों को पराजित कर अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार किया। इस वंश का अंतिम शासक आज़िदहाक

था जिसकी निर्बलता एवं संकीर्ण विचारधारा के कारण इस वंश का पतन हुआ। फलस्वरूप हिख़ामंशी सरदार कोरूश ने 550 वर्ष ई. पू. में हिख़ामंशी शासन की नींव डाली।

पासारगाद (कोरूश का समाधि स्थल)

हिख़ामंशी वंश

पारस के प्रमुख क़बीलों में हिख़ामंशी क़बीला सर्वाधिक बलशाली था तथा पारस क्षेत्र का राजतंत्र इसी क़बीले के हाथों में था। पासारगादी शासकों का प्रभुत्व हिख़ामंशी के नाम से प्रसिद्ध था। विख्यात शासक कोरूश ने इस वंश का नाम अपने पूर्वज हिख़ामंशी के नाम पर रखा। पारस के अतिरिक्त इन्होंने ईलामी राज्य के अज़ान क्षेत्र को भी अपने अधिकार में ले लिया तथा पतनशील माद शासकों ने भी इनका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। इस विस्तार के कारण हिख़ामंशी राज्य अतिविशाल हो गया। राज्य विस्तार के साथ-साथ इस काल में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी अभूतपूर्व उन्नति हुई।

मेसोपोटेमिया के बाबुली राजवंश शासक और लघु एशिया के लोदीया शासक नवस्थापित हिख़ामंशी राज्य से आशंकित थे। इन्होंने हिख़ामंशी राज्य के विरुद्ध मिस्र राज्य को भी अपने साथ मिला लिया लेकिन यह दोनों मिलकर भी कोरूश के राज्य विस्तार का सामना न कर सके और उन्होंने कोरूश के सामने घुटने टेक दिए। 530 वर्ष ई. पू. एक युद्ध में कोरूश वीरगति को प्राप्त हुआ।

कोरूश के बाद उसके पुत्र कम्बोजिया ने अपने पिता के पदचिह्नों पर चलते हुए सीरिया, फ़िलिस्तीन तथा मिस्र को अपने राज्य क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया। परंतु इस विशाल राज्य को सुचारु रूप से चलाने की योग्यता कम्बोजिया में नहीं थी। इस दुर्बलता का लाभ उठाकर उसके भाई गऊमात ने शासन पर बलात् अधिकार कर लिया। फलस्वरूप अन्य उत्तराधिकारी भी उभरकर सामने आ गए लेकिन कोरूश के भतीजे दारयूश ने इस लड़खड़ाते हुए राजवंश की बागडोर सँभाल ली। बी-स्तून के शिलालेख के अनुसार उसने कई वर्षों के संघर्ष के उपरांत शत्रुओं का दमन कर केंद्र-शक्ति को पुनः स्थापित किया तथा खोए हुए वैभव को पुनः प्राप्त किया।

दारयूश ने अपने राज्यकाल, 522-486 वर्ष ई. पू., में अति बलशाली सेना, सुदृढ़ केंद्र-सत्ता तथा व्यवस्थित

आर्थिक प्रणाली बनाकर हिख़ामंशी राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। उसी के राज्यकाल में विशिष्ट नगर व्यवस्था पर आधारित कई प्रमुख नगर जैसे, पारसा, तख़्ते-जमशीद (जमशेद) नौरोज़ उत्सवस्थल–'इक्बाताना', ग्रीष्मकालीन राजधानी–'हमादान', शीतकालीन राजधानी–'शूश' तथा युवराज सिंहासन–'बाबुल' आदि आबाद हुए।

यूनान और ईरान के मध्य हुए युद्ध दारयूश के शासनकाल की मुख्य घटनाएँ हैं। दारयूश तथा उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में विजय के उपरांत मिली संपत्ति ने हिख़ामंशी सरदारों और सामंतों को विलासी और अकर्मण्य बना दिया।

हिख़ामंशी वंश का पतन

यद्यपि यूनान हिख़ामंशियों के प्रभुत्व में आ गया था लेकिन वास्तविक रूप से हिख़ामंशियों को यूनान विजय से कोई लाभ नहीं हुआ। यहाँ तक कि हिख़ामंशियों को यूनान से शांति समझौता करना पड़ा। सामंतों और सरदारों की आपसी कलह और उनकी महत्त्वाकांक्षाओं ने दरबार को षड्यंत्रों का केंद्र बना दिया। कोरूश द्वितीय का केंद्र के विरुद्ध विद्रोह तथा कूनाकसा मैदान में केंद्रीय सेनाओं से युद्ध के कारण बढ़ती हुई विद्रोही शक्तियों को बहुत बल मिला। फलस्वरूप प्रांतों के प्रमुख भी विद्रोह करने लगे। वास्तव में इन विद्रोहों के पीछे यूनानी गुप्तचरों का हाथ था जो ईरान के विभिन्न प्रांतों में पहले से ही बसे हुए थे। इसके साथ-साथ पश्चिमी सीमाओं पर भी विरोधी शक्तियाँ सिर उठा रही थीं।

तख़्ते-जमशीद, सर्वराष्ट्र द्वार

दूसरी ओर मकदूनिया (मैकेडोनिया) के सिकंदर ने उचित समय पर प्रहार कर यूनान के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया तथा उसने यूनान के आसपास के सीमावर्ती हिख़ामंशी क्षेत्र भी अपने अधिकार में ले लिए। उसकी विश्वविजय तथा सीमाविस्तार की महत्त्वाकांक्षा ने यूनानियों को हिख़ामंशियों से प्रतिशोध लेने के लिए प्रोत्साहित किया। सिकंदर ने यूनान और मकदूनिया की सैन्य सहायता से पहले लघु एशिया फिर पश्चिमी हिख़ामंशी राज्य और अंत में 331 वर्ष ई. पू. में दारयूश तृतीय को पराजित कर हिख़ामंशियों का विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया। यूनानियों ने दारयूश तृतीय का वध कर उसके वैभवशाली प्रासाद जला डाले। ईरानियों का नरसंहार किया गया तथा सामाजिक स्थल, बहुमूल्य पुस्तकें और पांडुलिपियाँ भस्म कर दी गईं। संक्षेप में, सिकंदर की आड़ में यूनानियों ने अपनी पूर्व पराजय का खुल कर बदला लिया।

हिख़ामंशी वंश की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

यूनान से हिंदुस्तान की सीमाओं तक विशाल हिख़ामंशी साम्राज्य फैला हुआ था। यद्यपि उनके अधिकांश अधिकारी पारस और ईलामी थे लेकिन उनकी सेना में विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के लोग सम्मिलित थे। इसलिए हिख़ामंशी संस्कृति ने उन सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों के सद्गुणों को सामूहिक रूप से अपनाने का प्रयास किया। हिख़ामंशियों ने ईलामी लिपि से प्राचीन कीलाक्षर लिपि बनाई तथा आरामी दबिर (सचिव) की लेखनशैली का प्रयोग अपने सरकारी काम-काज में किया। इसी प्रकार उन्होंने बेबीलोनिया की खगोलविद्या तथा चिकित्सा पद्धति, फ़ीनिक्वियों की सामुद्रिक विद्या, स्थापत्य कला और भवन निर्माण की शैली को अपनाया। उन्होंने सुदृढ़ सैन्य व्यवस्था, विभिन्न देशों और जातियों की मिली-जुली सेना को संगठित करने की प्रक्रिया, नौसेना बल को बढ़ाने की व्यवस्था, डाक एवं संचार व्यवस्था का उचित प्रबंध तथा आपसी तालमेल के द्वारा उत्तरदायित्वपूर्ण विभागों की स्थापना की तथा उचित आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियाँ अपनाई। यही कारण है कि हिख़ामंशी वंश का विशाल साम्राज्य दीर्घकाल तक विश्व के बड़े भू-भाग पर राज्य करता रहा। तत्कालीन ईरान के इतिहास में यह सबसे महत्त्वपूर्ण राज्य काल माना जाता है।

सैल्युकी वंश और उसके उत्तराधिकारी

सिकंदर के जीवनकाल तथा ईरान में उसके शासन काल के बारे में अनेक भ्रांतियाँ हैं। इसका विवरण अधिकतर लोक-कथाओं पर आधारित है जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक स्रोतों से नहीं होती। ऐतिहासिक स्रोत और लोक-कथाओं के मिश्रित विवरण का विवेचन अत्यधिक कठिन है। एक मतानुसार उसने यह निश्चय किया कि हिख़ामंशियों के शेष सामंतों के अनुभव और शक्ति का उपयोग करते हुए वह स्वयं के लिए पूर्वी भाग में एक राज्य की स्थापना करे। इसीलिए उसने दारयूश तृतीय की पुत्री रोशनक से विवाह किया तथा अपने निकट संबंधियों और सरदारों को हिख़ामंशी राज परिवार से वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। यहाँ तक कि उसने ईरान की वेशभूषा अपनाने की भी प्रेरणा दी। लेकिन इस कार्य के लिए उसे अपने ही संबंधियों और सरदारों का समर्थन प्राप्त न हो सका। अधिकांश सैनिक ईरानियों की संपत्ति लूटकर वापस यूनान जाने के इच्छुक थे।

पश्चिमी एशिया की ओर लौटते हुए 323 वर्ष ई. पू. में सिकंदर का देहांत हो गया। किसी निश्चित उत्तराधिकारी के अभाव में उसका राज्य तीन भागों में विभाजित हो गया। सैल्युकस को बृहत् ईरान का राज्य मिला तथा उसका राज्यकाल 312 वर्ष ई. पू. से प्रारंभ हुआ। उसके राज्यकाल में ही हिख़ामंशी काल के शेष सामंतों को बल मिला। सैल्युकस ने उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की तथा इसी कारण ईरानी सभ्यता को पुनर्जीवन मिला। उसने बेबीलोनिया के निकट 'सैल्युकिया' नामक नगर आवासित कर अपनी राजधानी की स्थापना की। यहाँ आवासित अधिकांश यूनानियों का अपने मूल स्थान अर्थात् यूनान से बंधन टूट चुका था। इस कारण यही क्षेत्र उनकी मातृभूमि बन गया। इसीलिए उन्होंने सैल्युकिया की सीमाओं को भी अति सुदृढ़ बनाया ताकि किसी भी शत्रु का डटकर सामना कर सकें। पारत क्षेत्र पूर्णतः यूनानियों से रिक्त हो गया। मूलतः यूनानी शासकों के अधीन मध्य एशिया के राज्यों ने भी प्रयत्न किया कि रेशम मार्ग के व्यापार से प्राप्त आय के द्वारा स्वयं को पूर्णतः स्वतंत्र और स्वावलंबी बना लें। सिकंदर की वापसी के केवल सत्तर वर्ष बाद ही यूनानियों को ईरान से भागना पड़ा और उनका राज्य क्षेत्र

मात्र दजला के आसपास के क्षेत्रों में ही सिमटकर रह गया। सांस्कृतिक दृष्टि से सिकंदर और यूनानियों का प्रभाव केवल पश्चिमी ईरान पर ही पड़ा। अशकानियों के उत्थान के बाद ईरान में सैल्युकी यूनानियों की संख्या नगण्य हो गई।

अशकानी वंश

सैल्युकी शासकों की नीति थी कि ईरानी स्वतंत्र रहते हुए सैल्युकियों को राजस्व देते रहें जिससे कि उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ रहे और ईरानियों पर उनका वर्चस्व भी निरंतर बना रहे। लेकिन ईरानियों के स्वतंत्र स्वभाव ने उन्हें दासता और विदेशी शक्ति को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से एकजुट कर दिया। फलस्वरूप अश्क ने सैल्युकी शासकों के विरुद्ध ईरानियों का मार्गदर्शन किया। इस कार्य में उसे अपने जीवनकाल में सफलता न मिल सकी लेकिन उसके वंशज मेहरदाद ने सैल्युकियों को सैल्युकिया प्रदेश से खदेड़कर अपने पूर्वज अश्क का यह सपना पूरा किया तथा कालांतर में उसी के नाम पर अशकानी वंश की स्थापना की। मेहरदाद को अन्य अर्ध स्वतंत्र ईरानी शासकों ने पूर्ण सहयोग दिया लेकिन पहलवान कहलाए जाने वाले क़बीले के सरदारों ने अशकानियों को सहयोग देते हुए स्वयं को स्वतंत्र रखा। इस कारण अशकानियों को सदैव अस्थिरता का सामना करना पड़ा।

इसी काल में लघु एशिया पर अधिकार करने के पश्चात् रोम की सेनाएँ ईरान की सीमा की ओर बढ़ रही थीं। मिस्र के गवर्नर और रोमी सेनाध्यक्ष सैल्युकस के नेतृत्व में सन् 52 ई. पू. में रोमी सेनाओं ने पश्चिमी ईरान पर आक्रमण कर दिया। लेकिन अशकानी वंश के प्रसिद्ध सरदार सूरना ने सवार दस्तों की सहायता से सैल्युकस को हर्रान के मैदान में न केवल बुरी तरह पराजित किया अपितु सैल्युकस सहित अनेक रोमी सरदारों को मौत के घाट उतार दिया।

कुछ समय पश्चात् रोमी सेना के आक्रमण फिर से प्रारंभ हो गए। इनका मुख्य आकर्षण आर्मिनिस्तान था जो कि आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसके कुछ सरदार भी रोमी सरकार के पक्षधर थे। दूसरी ओर ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार प्रबल रूप धारण कर चुका था और इसका प्रभाव पश्चिमी एशिया तक फैल गया था। आर्मिनिस्तान में ईसाई धर्म को फैलाने में रोमी साम्राज्य ने भरसक प्रयास किया तथा अधिकतर सफल रहे। आगामी काल में इस प्रभाव का सामना पहले अशकानी तथा बाद में सासानी वंश के शासकों को भी करना पड़ा।

ईरान की पश्चिमी सीमाओं के अतिरिक्त पूर्वी सीमाओं पर भी शांति नहीं थी। यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार पूरे क्षेत्र में व्याप्त था। अशकानियों ने पारती सरदारों की सहायता से पूर्वी सीमा पर भारत-पारती राज्य की स्थापना की। वास्तव में इस राज्य में अशकानियों का प्रभुत्व लेशमात्र था। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह राज्य भारतीय संस्कृति का केंद्र बन चुका था। इसी काल में मध्य एशिया से आए कुषाणों ने यहाँ कुषाण राज्य की स्थापना की तथा बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर इसे राजधर्म घोषित किया। उनके प्रयत्न के फलस्वरूप ही पूर्वी ईरान में बौद्ध धर्म का अधिक विकास हुआ। बौद्ध एवं ईसाई धर्म के प्रसार के साथ-साथ अशकानी काल में ज़रतुश्त धर्म भी ईरान के आंतरिक क्षेत्रों में फैल रहा था। लेकिन अशकानी शासकों ने ज़रतुश्त धर्म को सरकारी मान्यता नहीं दी। इस प्रकार अशकानियों ने उस काल में एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की।

अशकानी वंश का शासनकाल लगभग 476 वर्ष तक रहा। ईरान के इतिहास में किसी भी राज्य वंश के लिए यह दीर्घतम शासन काल है। अशकानियों की उत्पत्ति उत्तर-पूर्वी ईरान के 'पहलव' स्थल से स्वीकार की गई है। भाषाविदों के अनुसार उनकी भाषा 'फ़ारसी-मियाने' अर्थात् मध्यकालीन फ़ारसी थी। पहलव स्थान के कारण ही फ़ारसी-मियाने 'पहलवी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। पहलवी भाषा को दो भागों में विभाजित किया जाता है—(क) पहलवी-अशकानी, और (ख) पहलवी-सासानी। पहलवी-अशकानी, पहलवानी संस्कृति का मूलाधार थी जिसका प्रारंभ पीशदादी काल से हुआ लेकिन इसका चरमोत्कर्ष अशकानी काल में ही हुआ। इसी कारण 'हमासा सराई' (महाकाव्य लेखन) शैली की नींव अशकानी काल में ही रखी गई जिसका उत्कृष्ट रूप फ़िरदौसी के शाहनामे में मिलता है।

सासानी वंश

अशकानी वंश की विकेंद्रीकरण तथा धर्मनिरपेक्षता की नीति के कारण अनेक ईरानी सामंतों और सरदारों को शक्तिशाली बनने का अवसर मिल गया। फलस्वरूप पारस प्रांत ने कभी केंद्र शक्ति के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया।

पारस प्रांत के गवर्नर तथा बाबक के पुत्र अर्दशीर ने अशकानी विरोधी तत्त्व, जैसे, रोमी सेना के प्रति अशकानियों की ईरान विरोधी नीति से रुष्ट प्रांतीय अश्वारोही दलों के प्रमुख तथा सरकारी समर्थन प्राप्त न होने के कारण अशकानियों से रुष्ट ज़रतुश्त धर्मानुयायी आदि को एकत्र किया और 426 वर्ष ई. पू. में अशकानी केंद्र सत्ता को पराजित कर सासानी वंश की नींव डाली।

सासान, पारस प्रांत के प्रमुख (ज़रतुश्ती) पूजा केंद्र अनाहिता का प्रमुख धर्माधिकारी था। अर्दशीर के शासनकाल से ही ज़रतुश्ती धर्म के प्रचार तथा नए अग्नि-पूजा स्थलों के निर्माण एवं व्यवस्था के लिए प्रमुख धर्माचार्य के नियंत्रण तथा संरक्षण में एक विशेष कार्यालय स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त अश्वारोही दलों के प्रमुखों, शूरवीरों, सामंतों और क़बाइली सरदारों को उचित पदों पर आसीन किया गया। संक्षेप में, हिख़ामंशियों की भांति केंद्र शक्ति को सुदृढ़ बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस प्रकार सभी राज्य संबंधी कार्य धर्माधिकारियों और सामंतों के प्रभुत्व में आ गए। यदि किसी शासक ने उनसे स्वतंत्र होकर कुछ करने का प्रयत्न किया तो उसे सिंहासनहीन होना पड़ा। जैसे अर्दशीर (प्रथम) के पुत्र शापूर प्रथम का झुकाव 'मानी' धर्म (जो कुछ मतानुसार ईसाई, बौद्ध और ज़रतुश्ती धर्म का मिश्रण था) की ओर था लेकिन ज़रतुश्ती धर्मानुयायियों के कड़े विरोध के कारण उसे न केवल अपना ध्यान मानी धर्म के संरक्षण की ओर से हटाना पड़ा अपितु मानी का वध करने की आज्ञा भी देनी पड़ी। परिणामस्वरूप ज़रतुश्ती प्रमुखों के दबाव के कारण ज़रतुश्ती धर्म को राजधर्म घोषित किया गया तथा अन्य धर्मों के प्रचार-प्रसार पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

सासानी काल में पश्चिमी सीमा पर कुछ वर्षों तक शांति रहने के उपरांत आर्मिनिस्तान पुनः सासानी और रोमी सेनाओं के मध्य झगड़े की जड़ बन गया। शापूर द्वितीय के काल में सासानी शासन का वर्चस्व रहा लेकिन अरब शासकों के राज्यों से जुड़ी हुई दक्षिण-पश्चिमी सीमाओं पर यायावरों के आक्रमणों के कारण सीमावर्ती विवाद

प्रारंभ हो गए। उनके दमन के लिए अरब शासकों को उचित आर्थिक दंड दिए गए ताकि वे उन लोगों पर पूर्ण नियंत्रण रखें। लेकिन बहराम ग़ोर के नाम से प्रसिद्ध बहराम पंचम के शासनकाल में ख़ुरासान की ओर से फिर आक्रमण प्रारंभ हो गए। इस समय सासानी राज्य व्यवस्था के प्रमुख अंगों अर्थात् सामंतों और धर्माधिकारियों के बीच आंतरिक कलह छिड़ी हुई थी। इसका एक कारण 'मज़दक' धर्म का उदय भी था। इस धर्म के कुछ पक्षधर राजपरिवार के तथा अन्य सामंत थे। कुबाद राजा के काल में इस धर्म को राजसंरक्षण प्राप्त हुआ लेकिन उसकी मत्यु के उपरांत यही विषय राजसिंहासन के अधिकारियों के बीच रक्तरंजित षड्यंत्रों का कारण बन गया। अंततः ज़रतुश्ती धर्मानुयायी अनुशीरवान सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने मज़दक धर्म का पूर्णतः उन्मूलन किया।

अनुशीरवान ने राज्य व्यवस्था में कई फेर-बदल कर सासानी वंश का पतन होने से बचाया। उसे सैन्य अभियानों में रोमी सेनाओं के विरुद्ध सफलता भी मिली। लेकिन उसके बाद के सासानी शासक राज्य तथा सैन्य संचालन में अकुशल थे तथा इसी कारण बाह्य एवं आंतरिक राज्य विरोधी शक्तियों का दमन करने में असफल रहे। रोमी शासक हरक्युलिस के भरपूर आक्रमण का अयोग्य सासानी सामंत और सेनाध्यक्ष सामना न कर सके और परिणामस्वरूप पराजय का मुँह देखना पड़ा। सासानी सामंतों की आपसी कलह के कारण ख़ुसरो परवेज़ का वध हुआ तथा उसके स्थान पर शीरविय को सासानी सिंहासन पर बैठाया गया। यह इसलाम धर्म के उदय का समकालीन युग था। सासानी दरबार के रक्तरंजित षड्यंत्रों के कारण राजनीतिक स्थिति अस्थिर थी। ख़ुसरो परवेज़ के पौत्र यज़्दगुर्द तृतीय के सभी प्रयासों के बाद भी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। वर्ग संघर्ष तीव्र अति तीव्र होते गए तथा लड़खड़ाते हुए सासानी वंश को उखाड़ फेंकने में सन् 21 हि. में इसलाम धर्मानुयायी अरब की सेना को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा।

इसलामोत्तर काल

हज़रत मुहम्मद साहब के बाद दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत अबूबक्र के काल में ख़ालिद बिन वलीद ने सासानी वंश की जर्जर स्थिति का लाभ उठाकर सासानी साम्राज्य की सीमाओं पर आक्रमण किया। हरमुज़ की अध्यक्षता में पहली बार सासानी सेना का सामना ख़ालिद बिन वलीद के नेतृत्व में अरब सेना से हफ़ीर नामक स्थान पर हुआ। यह युद्ध 'जंगे-ज़ात-उल-सुलासुल' के नाम से प्रसिद्ध है। निर्बल नेतृत्व के कारण सासानी सेना की पराजय हुई। यह अरबों की ईरान साम्राज्य पर प्रथम उत्साहवर्धक विजय थी।

तृतीय ख़लीफ़ा हज़रत उमर के काल में साद बिन अबी वक्कास के नेतृत्व में अरब सेना का ईरान विजय अभियान प्रारंभ हुआ। लेकिन सासानी सेनानायक रुस्तम बिन फ़रुख़ ज़ाद के नेतृत्व में सासानी सेना ने इसलामी सेना के आक्रमणों का करारा जवाब दिया। इस कड़े संघर्ष की सूचना मुस्ना बिन हारीस ने मदीना भेजी। द्वितीय ख़लीफ़ा हज़रत उमर ने उसकी सहायता के लिए अबु उवेदा के नेतृत्व में इसलामी सेना को हीरा द्वीप पर भेजा। इस संयुक्त सेना ने सासानी सेनानायक नर्सी और जालीनूस को पराजित कर दिया तथा फ़रात नदी के पश्चिमी छोर पर बाँधे गए पुल को पार कर सासानी सीमाओं के अंदर प्रवेश किया। लेकिन यहाँ उनका सामना सासानी सेना का नेतृत्व कर रहे बहमन जादविया (मर्दानशाह) से हुआ। इसलामी सेना को पहली बार 'जसर' (पुल) की लड़ाई में सासानी सेना के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप यह उनकी प्रथम पराजय हुई। अबु

उबेदा का इस युद्ध में वध हुआ।

अबु उबेदा के वध की सूचना पाकर हज़रत उमर ने ईरानी सीमा पर स्वयं इसलामी सेना का नेतृत्व करना चाहा लेकिन हज़रत अली के सुझाव पर उन्होंने साद बिन वक्कास को तुरंत ईरान की ओर रवाना किया। रुस्तम बिन फ़र्रुख़ ज़ाद ने क़ादसिया के मैदान में इसलामी सेना का सामना करने के लिए सासानी सेना को पंक्तिबद्ध किया। लेकिन चार माह तक उसने इसलामी सेना से सुलह करने का प्रयास किया और जानना चाहा कि उनके आक्रमण का उद्देश्य विशेष क्या है? इस पर इसलामी दूतों ने उसे अपने मंतव्य से अवगत किया कि यदि ईरानी सम्राट इसलाम धर्म स्वीकार कर मानव पूजा का बहिष्कार करे और लोगों को एकल ख़ुदा की इबादत में आस्था रखने तथा अन्य मतों की अपेक्षा इसलाम धर्म अपनाने की स्वीकृति दे तो इसलामी सेनाएँ किसी भी प्रकार का विरोध नहीं करेंगी। संक्षेप में, इसलामी सेनाओं के आक्रमण का एकमात्र उद्देश्य इसलाम धर्म का प्रचार एवं प्रसार था। जब इसलामी नेतृत्व के हर संभव प्रयास सासानी सम्राट रुस्तम बिन फ़र्रुख़ ज़ाद के सामने विफल हो गए तो क़ादसिया का युद्ध हुआ।

क़ादसिया के युद्ध में इसलामी सेना का पलड़ा भारी रहा और रुस्तम बिन फ़र्रुख़ ज़ाद वीरगति को प्राप्त हुआ। इसलामी सेना ने सासानियों की राजधानी मदाइन को तहस-नहस कर दिया। आगे बढ़ती हुई इसलामी सेना हमादान तथा ख़ुज़िस्तान तक पहुँच गई। सन् 21 हि. में 'निहाद' के युद्ध में स्वयं यज़्दगुर्द की उपस्थिति में सासानी सेना का नेतृत्व मर्दानशाह जुल हाजिब कर रहा था और इसलामी सेना की बागडोर लुकमान बिन मकर्रन मज़नी के हाथों में थी। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। अंत में सासानी सेना की भारी पराजय हुई। यज़्दगुर्द पूर्वी ईरान की ओर भाग गया लेकिन उसके दोषपूर्ण अतीत के कारण उसे कहीं भी शरण न मिली। लगभग तेरह-चौदह वर्ष तक वह इधर-उधर भागता रहा। सन् 35 हि. में एक दिन जब उसने एक चक्की वाले के यहाँ शरण ली तो चक्की वाले ने रात में सोते हुए उसका क़त्ल कर दिया। इस प्रकार वैभवशाली सासानी साम्राज्य और गौरवपूर्ण प्राचीन ईरान के इतिहास की गाथा का त्रासदीपूर्ण अंत हुआ।

हज़रत अली, चतुर्थ ख़लीफ़ा को विभिन्न षड्यंत्रों द्वारा ख़िलाफ़त से हटाकर उमवी वंश के प्रथम ख़लीफ़ा मुआविया बिन अबु सिफ़यान तख़्ते-ख़िलाफ़त पर बैठे। सन् 122 हि. तक ख़िलाफ़त की बागडोर इस वंश के हाथों में रही। ईरानी समाज की पूर्ण हमदर्दी हज़रत अली के ख़ानदान के साथ थी और उसकी हार्दिक इच्छा थी कि ख़िलाफ़त हज़रत मुहम्मद साहब के वंशजों को ही मिले। इसलिए उन्होंने उमवी वंश की ख़िलाफ़त का विरोध किया तथा प्रयत्नशील रहे कि उमवी तख़्ते-ख़िलाफ़त शीघ्र अति शीघ्र अब्बासी वंश को प्राप्त हो। हज़रत मुहम्मद के वंशज मुहम्मद बिल अली अब्बासी को प्रथम ख़लीफ़ा बनाने का अभियान शुरू किया गया। अधिकांश राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र ख़ुरासान रहा। मुहम्मद बिल अली अब्बासी के दर्दनाक क़त्ल से उमवी वंश के विरुद्ध अथवा अब्बासी वंश के समर्थन में उमवी विरोधी गतिविधियाँ दिन प्रतिदिन बलशाली होती गईं। अबु सलमा ख़िलाल और अबु मुसलिम ख़ुरासानी के इस अभियान में जुड़ाने पर ख़ुरासान में नियुक्त उमवी गवर्नर नस्र बिन सयार वहाँ से पलायन करने पर बाध्य हो गया। उमवी वंश के ख़लीफ़ा मर्वान पंचम ने जब अपनी सैन्य शक्ति से इस अभियान का दमन करना चाहा तो उसे कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप सन् 132 हि. में 'ज़ाब' की जंग हुई तथा इसमें ईरानियों को विजय प्राप्त हुई। उमवी ख़लीफ़ा मर्वान का वध कर दिया गया।

उसके बध के साथ ही उमवी वंश का अंत तथा अब्बासी वंश की ख़िलाफ़त का प्रारंभ हुआ।

अब्बासी वंश की स्थापना में ईरानियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई परंतु इस वंश ने ईरानियों के बढ़ते प्रभाव के दमन के लिए ईरान-विरोधी नीति अपनाई। प्रसिद्ध ईरानी उमवी-विरोधी नेता अबुसलमा ख़िलाल का प्रथम अब्बासी ख़लीफ़ा अबुल अब्बास सफ़्फ़ाह के द्वारा कराया गया बध तथा मंसूर दवानक़ी द्वितीय ख़लीफ़ा के हाथों अबु मुसलिम ख़ुरासानी के क़त्ल ने अब्बासियों की ईरान-विरोधी नीति का पर्दाफ़ाश कर दिया। सातवीं सदी हि. में मंगोलों के आक्रमण ने बग़दाद को भी अपनी लूट-पाट एवं क़त्ल-ओ-ग़ारत का निशाना बनाया। परिणामस्वरूप अब्बासी वंश का समापन सन् 656 हि. में हलाकू के क्रूर हाथों से हुआ।

उपरोक्त परिस्थिति ने ईरानी समाज को दो भागों में विभाजित कर दिया—अलवी वंश समर्थक तथा अब्बासी वंश समर्थक। अब्बासी वंश समर्थकों का अनुमान था कि वह उचित समय आने पर अब्बासी ख़लीफ़ाओं से अपने उद्देश्यों को मनवाने में सफल होंगे। लेकिन ख़लीफ़ा हारून-उर-रशीद के काल में जब बरमकी परिवार को विज़ारत के महत्त्वपूर्ण पद से हटाया गया तो पुनः अब्बासियों की ईरान-विरोधी नीति खुलकर सामने आ गई। यद्यपि कुछ ईरानी नीतिज्ञों की मान्यता थी कि नया ख़लीफ़ा मामून ईरान-विरोधी नीति का पक्षधर नहीं था क्योंकि उसकी माँ ईरानी थी। लेकिन जब मामून ने मर्व (ख़ुरासान) के स्थान पर बग़दाद को तख़्ते-ख़िलाफ़त का केंद्र बनाया तथा अपने अरब पूर्वजों की नीति को बहाल किया तो ईरानियों को उसकी राजनीति समझ में आई। उल्लेखनीय है कि तूस में इमाम रिज़ा (रज़ा) का बहुत सम्मान एवं आदर था तथा अब्बासी ख़लीफ़ा के षड्यंत्र के फलस्वरूप हुई उनकी प्राणाहुति (शहादत) ने अलवी समर्थक ईरानियों को अब्बासी-ख़लीफ़ा विरोधी गतिविधियाँ अधिक तेज़ करने पर बाध्य कर दिया। मामून ने इन गतिविधियों को दमन करने के लिए सैन्यशक्ति का प्रयोग किया।

ईरान पर दो-सौ वर्षों के अरब शासन, विशेषतः मामून के मर्व से राजधानी स्थानांतरण के बाद कुछ ईरानी अभिजात्य परिवारों ने अपना शासन ईरान के विभिन्न भागों में स्थापित किया। ख़लीफ़ा बग़दाद ने भी इन्हें मान्यता दी तथा उनका उपयोग ख़लीफ़ा-विरोधी शिआ-समर्थक ईरानियों के अभियानों को कुचलने के लिए किया।

ताहिरी वंश (सन् 205-359 हि.)—ताहिरी परिवार का मूल स्थान पूशंज था। इस वंश का संस्थापक ताहिर बिन हुसैन बिन मुसैब पुशंजी अब्बासी ख़लीफ़ा मामून का विश्वासपात्र था। सन् 207 हि. में मामून ने ख़िलाफ़त-स्थल स्थानांतरण के उपरांत ताहिर को ख़ुरासान में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। उसने मर्व को अपनी राजधानी बनाया। लेकिन शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई तथा उसके स्थान पर उसका पुत्र तलहा बिन ताहिर गद्दीनशीन हुआ। उसके काल में सीस्तान में ख़ारिजियों का विद्रोह हुआ जिसे तलहा दबा न सका। परिणामस्वरूप ख़लीफ़ा-ए-बग़दाद ने अब्दुल्लाह बिन ताहिर को ख़ारिजियों के दमन के लिए नियुक्त किया। उसने न केवल ख़ारिजियों के ख़लीफ़ा विरोधी अभियान को कुचला बल्कि सत्तरह वर्ष तक अब्बासी मोतिसम का विश्वासपात्र बना रहा। उसकी मृत्यु के उपरांत ख़लीफ़ा ने उसके लड़के मुहम्मद बिन ताहिर को मान्यता प्रदान की। उसे ख़ुरासान के अतिरिक्त मक्का-मदीना, ईराक़ एवं आस-पास के क्षेत्र का उत्तरदायित्व भी सौंपा गया। इसके साथ-साथ बग़दाद का मुख्य प्रबंधक भी बनाया गया। उपरोक्त अनेक उत्तरदायित्व ही इस ताहिरी शासक के पतन का कारण बने। उसके विरुद्ध सफ़्फ़ारी परिवार के नेतृत्व में गठित ईरानी सेना ने विद्रोह किया और ताहिरी वंश का विनाश किया।

सफ़्फ़ारी वंश–इस वंश की स्थापना सीस्तान के अय्यार याक़ूब लैस के प्रयासों के फलस्वरूप हुई। प्रथम उसने सीस्तान तथा बाद में ख़ुरासान पर अधिकार कर ईरान के विशाल क्षेत्र पर अपना राज्य स्थापित किया। लेकिन जब याक़ूब लैस ने बग़दाद पर हमला कर ख़िलाफ़त की गद्दी का विनाश करना चाहा तो ख़लीफ़ा की सेनाओं ने उसकी सेनाओं को बुरी तरह हरा दिया। उसके अनेक साथी इस अभियान में मारे गए। सन् 265 हि. में याक़ूब की मृत्यु उपरांत उसके भाई इम्रउल लैस ने सफ़्फ़ारी राज्य की बागडोर सँभाली। ख़लीफ़ा मोतज़िद ने उसके जनाधार को ध्यान में रखते हुए उसे मान्यता तो प्रदान की मगर साथ ही साथ उनके विरोधी सामानी परिवार की गुप्त रूप से सहायता शुरू कर दी। सामानी अमीर इसमाइल के नेतृत्व में सफ़्फ़ारियों का विरोध खुलकर होने लगा। परिणामस्वरूप एक लड़ाई में सामानी अमीर ने सफ़्फ़ारी शासक को कैद कर ख़लीफ़ा के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। बग़दाद में कई दिन कारावास में रखने के बाद ख़लीफ़ा के आदेश पर उसका वध कर दिया गया।

सामानी वंश–इस राजपरिवार के प्रमुख का नाम सामान ख़ुदात (ग्राम प्रधान) था। वह बल्ख़ अथवा समरक़ंद के एक गाँव 'सामान' का मुखिया था। उसके पुत्र असद के चार सुपुत्र नूह, अहमद, याहिया और इलियास ख़लीफ़ा मामून के विश्वासपात्र थे। चारों भाइयों को विभिन्न क्षेत्रों की हुकूमत मिली हुई थी। अहमद बिन असद की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्र नस्र को ख़लीफ़ा की ओर से अमीर के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। अतः नस्र ने सामानी अमारत (राज्य) की नींव डाली। लेकिन उसके भाई इसमाइल ने उसे अधिक दिन गद्दी पर न रहने दिया तथा उसे पराजित करके स्वयं सामानी राज्य की कमान सँभाल ली। इसमाइल ने ही अब्बासी ख़लीफ़ा के प्रोत्साहन पर सफ़्फ़ारी वंश के प्रमुख इम्रउल लैस को बंदी बनाकर बग़दाद में ख़लीफ़ा को सौंप दिया। इसी प्रकार ख़लीफ़ा-ए-बग़दाद को प्रसन्न रखने के लिए उसने तबरिस्तान की अलवी हुकूमत का विनाश करना चाहा लेकिन उसका यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ तथा पुनः अलवियों ने सामानियों के प्रभाव को उस क्षेत्र से उखाड़ फेंका।

सन् 295 हि. में अमीर इसमाइल के देहांत के उपरांत शासन की बागडोर उसके पुत्र अहमद सामानी ने सँभाली। उसके वज़ीर अबु उबैदुल्लाह की दूरदृष्टि, विवेक एवं न्याय नीति के कारण अहमद सामानी का राज्यकाल ईरानी इतिहास में बहुत प्रशंसनीय रहा। इसी प्रकार उसके आगामी वज़ीर अबुल फ़ज़ल मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बलअमी का समय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति तारीख़े-तबरी का फ़ारसी अनुवाद इसी विद्वान मंत्री के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ। इस काल में बहुचर्चित इसमाइली मत का मावरा-उन-नहर (ट्रांसऑक्सियाना) क्षेत्र में प्रचलन एवं प्रसार ज़ोरों पर था। यहाँ तक कि अमीर इसमाइल भी दिल से इसी मत का अनुयायी था। सुन्नी मत के अनुयायी अन्य दरबारियों ने उसके इस अनुसरण पर कड़ी आपत्ति की तथा उसे सिंहासन छोड़ देने पर बाध्य कर दिया। परिणामस्वरूप उसके उत्तराधिकारी अमीर नूह बिन इसमाइल के काल में इसमाइलियों पर घोर अत्याचार हुए। उसकी क्रूर नीति ही सामानी वंश के पतन का कारण बनी। दरबार के विभिन्न मंत्रियों तथा सामंतों में कलह एवं आंतरिक लड़ाई छिड़ गई। इसका लाभ ईलख़ानियों ने उठाया तथा उन्होंने उचित समय पर आक्रमण कर सामानियों के वंश का अंत किया।

अलवी वंश–उपरोक्त चर्चित काल के समकालीन तबरिस्तान में शिआ शासन विद्यमान था। अलवी (हज़रत अली से संबंधित) शासनाध्यक्ष 'दायी' कहलाते थे। अलवी शासकों को न तो अब्बासी ख़लीफ़ा की मान्यता प्राप्त थी न ही वे अब्बासी ख़लीफ़ा के अधीन रहना चाहते थे। इसी कारण ख़लीफ़ा की ओर से अन्य अमीर तबरिस्तान

की अलवी हुकूमत के विरुद्ध कार्य करने के लिए तत्पर रहते थे।

इस शासन का संस्थापन इमाम हसन के वंशज मुहम्मद बिन इब्राहिम के पथप्रदर्शन में हसन बिन ज़ैद ने किया और वही प्रथम शासनाध्यक्ष बने। सन् 270 हि. में हसन बिन ज़ैद के देहांत के उपरांत बाह्य एवं आंतरिक ख़तरे बढ़ गए। यहाँ तक कि सामानियों के सरदार मुहम्मद बिन हारून सरख़सी ने अलवी दायी (द्वितीय) का वध कर दिया तथा तबरिस्तान का क्षेत्र आगामी तेरह वर्षों तक सामानी शासन के प्रभुत्व में रहा। तदुपरांत नासिर कबीर के नाम से विख्यात नासिर उतरूष ने पुनः तबरिस्तान को सामानियों के पंजे से स्वतंत्र करा अलवी शासन का पुनःस्थापन किया। लेकिन आंतरिक विद्रोहों ने उसे भी चैन से न रहने दिया। उधर सामानी सरदार भी लगातार तबरिस्तानी शासन के लिए कठिनाइयाँ खड़ी करते रहे। अंततः सन् 316 हि. में सामानी समर्थक सरदार इम्फ़ार बिन शरवीय एवं मर्दाविच ज़य्यारी ने अलवी वंश के अलवी दायी हसन बिन क़ासिम एवं माकान बिन काकी को परास्त किया तथा हसन बिन क़ासिम इस लड़ाई में मारा गया। तबरिस्तान पुनः सामानी राज्य के अधीन आ गया तथा अलवी शासन का पूर्णतया पतन हुआ।

आले-बूइए (बूइए) वंश–मान्यता है कि बूइए नामक व्यक्ति का संबंध अंतिम सासानी शासक यज़्दगुर्द तृतीय से था तथा अन्य मतानुसार उसका संबंध ग़ौर से था। इसलामी काल का यह प्रथम शिआ शासक था जिसे अब्बासी ख़लीफ़ा ने इसके शक्तिशाली प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए मान्यता प्रदान की। क़ज़वीन में दीलमान प्रांत के गाँव कियाकीलश के निवासी आले-बूइए के तीन पुत्र अली, हसन एवं अहमद आरंभ में तबरिस्तान के अलवी सरदार माकान बिन काकी के समर्थक थे लेकिन अलवी शासन के पतन के उपरांत इन्होंने मर्दाविच ज़य्यारी का साथ दिया। उसने अली बिन बूइए को इराक़े-अजम में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। कुछ समय बाद अली ने अपने भाइयों के साथ एकजुट हो ज़य्यारी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर आले-बूइए के राज्य क्षेत्र का संस्थापन किया। आरंभ में तो अब्बासी ख़लीफ़ा अत्यधिक रुष्ट था लेकिन अली बिन बूइए की बढ़ती हुई शक्ति को ध्यान में रखते हुए उसने इस शिआ राज्य को मान्यता प्रदान की।

आले-बूइए शासकों में सबसे प्रसिद्ध राज्यकाल अज़्दुद्दौला दीलमी का था। उसने न केवल अपने राज्य में ही शिआ मत का प्रचार एवं प्रसार किया बल्कि बग़दाद के करख़ मुहल्ले में भी शिआ मतानुयायियों के लिए भी अनुकूल एवं सुरक्षित वातावरण बनाया। इसके अतिरिक्त उसने बग़दाद के शिआ आलिमों, जैसे शेख़ मुफ़ीद, सैयद मुर्तज़ा एवं सैयद रज़ी आदि को पूर्ण समर्थन प्रदान कर सुन्नी धर्माचार्यों के साथ विभिन्न विषयों पर विचार-मंत्रणा (मनाज़िरा) आयोजित करने का वातावरण बनाया ताकि शिआ मत के सिद्धांतों को पूर्णतः सुरक्षा मिल सके।

आले-बूइए का प्रभुत्व मलिक रहीम के कमज़ोर एवं निर्बल राज्य काल तक ही सीमित रहा। बग़दाद में ख़लीफ़ा के समर्थक सलजूक़ी सरदार तुग़रिल बेग के आगमन के उपरांत आले-बूइए तथा ईरान के अन्य क्षेत्रों से उसके प्रभुत्व का अंत हुआ।

ग़ज़नवी शासनकाल–सामानी वंश के अंतिम शासकों ने अपनी सेना को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से तुर्क ग़ुलामों को अपनी सैन्य व्यवस्था में शामिल किया। इनमें अल्पतगीन नामक तुर्क दास ने अपने कौशल एवं वीरता के बल से सामानी दरबार में सेनाध्यक्ष का पद प्राप्त किया। अमीर अब्दुलमलिक की मृत्यु के उपरांत उसने

स्वयं को शासनाध्यक्ष घोषित करने का प्रयत्न किया। नए सामानी अमीर, अमीर मंसूर ने न केवल उसे पदच्युत किया बल्कि उससे नीशापूर का क्षेत्र भी वापस ले लिया। वह अमीर के रोष से बचने के लिए ग़ज़नी की ओर भाग गया। जब सामानी सेना उसके दमन के लिए ग़ज़नी पहुँची तो उसने अपनी छोटी सी टुकड़ी से सामानी सेना को पराजित किया तथा ग़ज़नी में स्वयं का शासन स्थापित किया। अल्पतगीन की मृत्यु के उपरांत उसके उत्तराधिकारियों में सिंहासन के लिए हुई लड़ाई में उसका दामाद सुबुक्तगीन विजयी रहा तथा सन् 366 हि. में सिंहासनारूढ़ हुआ।

इस वंश का सबसे प्रसिद्ध अमीर महमूद ग़ज़नवी था जिसने सर्वप्रथम अमीर के स्थान पर 'सुलतान' शब्द का प्रयोग अपने नाम के साथ किया। लेकिन उसने ख़लीफ़ा से अपने संबंध सम रखे। उसके राज्य काल में ग़ज़नवी राज्य सीमा का प्रसार ईरान की पश्चिमी सीमा तक रहा। उसके शासन की मुख्य उपलब्धियों में इसमाइली शिआओं का नरसंहार, हिंदुस्तान पर आक्रमण तथा जिहाद के नाम पर की गई लड़ाइयाँ प्रमुख हैं। उसने अपने दरबार को अति वैभवशाली बनाने का सफल प्रयास किया। उसकी राजधानी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का विशाल केंद्र रही। लेकिन उसके निष्ठुर व्यवहार का शिकार फ़िरदौसी भी बना। उसकी मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों, मुहम्मद एवं मसऊद में सिंहासन हथियाने के लिए झगड़े हुए। अंत में दरबारियों के समर्थन से मसऊद सुलतान बना तथा अपने भाई मुहम्मद को अंधा करवा दिया। इसके अतिरिक्त मुहम्मद के समर्थक एवं प्रसिद्ध वज़ीर हसनक को फाँसी पर चढ़ा दिया।

सलजूक़ी सरदारों ने सुलतान मसऊद को 'दंदानकाक' के युद्ध में पराजित कर ग़ज़नवी वर्चस्व को जर्जर कर दिया। बाद में सुलतान मसऊद ने हिंदुस्तान पर आक्रमण कर वहाँ से आर्थिक लाभ प्राप्त करना चाहा लेकिन उसके पिता के समर्थकों ने इस प्रयत्न को निष्फल बना दिया तथा उसका बध भी कर दिया। सन् 582 हि. तक ग़ज़नवी वंश का निर्बल एवं शक्तिहीन राज्य अस्तित्व में रहा।

उल्लिखित सभी राजवंशों से अधिक शक्तिशाली साम्राज्य सलजूक़ी साम्राज्य था। उनका साम्राज्य भी सासानियों भाँति ईरान की सीमाओं से परे शाम (सीरिया) तक फैल गया।

सलजूक़ वंश–सलजूक़ गज़ तुर्क नस्ल से संबंधित थे। अन्य तुर्क क़बीलों की तरह वे भी तुर्किस्तान के आसपास के क्षेत्र से कूच कर बुख़ारा, समरकंद एवं ज़ुद के पहाड़ी क्षेत्रों में आबाद हुए। इस वंश के प्रमुख सलजूक़ बिन लुक़मान के पाँच पुत्र थे। जब इन्होंने धीरे-धीरे अपना प्रभाव ग़ज़नवी राज्य में फैलाना शुरू किया तब महमूद ग़ज़नवी ने इनमें से इस्राइल को बंदी बना लिया तथा सलजूक़ियों को बुख़ारा से खदेड़ दिया। सलजूक़ का दूसरा पुत्र मिकाईल परिवार प्रमुख था। उसकी मृत्यु के उपरांत उसके बेटे चंगरी एवं तुगरिल ने प्रवासी सलजूक़ियों को एकत्रित किया और ज़ुद से बुख़ारा को कूच कर गया। उसने ग़ज़नवी सरदार सबवाशी को हरा ख़ुरासान पर कब्ज़ा कर लिया। यह सलजूक़ियों की राज्य स्थापना का प्रारंभ था। इसके उपरांत तुगरिल के नेतृत्व में सलजूक़ सेना ने महमूद ग़ज़नवी को परास्त किया तथा ग़ज़नवियों के अधिकांश राज्य क्षेत्र को सलजूक़ राज्य में परिवर्तित कर दिया। सलजूक़ परिवार ने कुशल व्यवस्था स्थापित करने के लिए पूरे क्षेत्र को अपने भाई-भतीजों में बाँट लिया। इनमें सबसे उल्लेखनीय तुग़रिल बेग है जिसका नाम अबु अली हसन बिन मूसा बिन सलजूक़ था। उसने ख़ुरासान

में अपनी हुकूमत क़ायम करने के बाद गुर्गान, तबरिस्तान तथा संपूर्ण ख़्वारिज़्म एवं आज़रबाईजान पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

सन् 447 हि. में अब्बासी ख़लीफ़ा अलक़ायम बिल्लाह के निमंत्रण पर तुग़रिल बग़दाद पहुँचा जहाँ आले-बूइए के अंतिम अमीर ने अपना वर्चस्व स्थापित किया हुआ था। तुग़रिल ने आले-बूइए के प्रभुत्व को समाप्त किया। ख़लीफ़ा ने प्रसन्न होकर सलजूक़ परिवार से वैवाहिक संबंध स्थापित किये। तुग़रिल की अधिकांश उपलब्धियाँ उसके कुशल वज़ीर अमीदुलमुल्क कंदरी के कारण थीं।

तुग़रिल की मृत्यु के उपरांत सलजूक़ परिवार में सिंहासन के लिए युद्ध हुए। अंततः आलिब (अल्प) अर्सलान ने सलजूक़ साम्राज्य की बागडोर सँभाली। उसके नेतृत्व में सलजूक़ साम्राज्य पूर्वी रोम तक फैल गया। इस प्रकार तुग़रिल बेग के अधूरे सपनों को आलिब अर्सलान ने साकार किया। उसी के काल में संपूर्ण ईरान सलजूक़ साम्राज्य के एक शासक की छत्रछाया में रहा।

सन् 465 हि. में जब आलिब अर्सलान अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर था, यूसुफ़ ख़्वारिज़्म नामक व्यक्ति ने उसकी हत्या कर दी। उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का जलालउद्दीन अबुल फ़तह उर्फ़ मलिक शाह सलजूक़ी सत्ता का स्वामी बना। उसके काल में सीरिया एवं अलीपो पर सलजूक़ी सेनाओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वहाँ के सलजूक़ परिवार के शासक शामी (सीरयाई) सलजूक़ कहलाए। इसी प्रकार जिन्होंने रोम, क़ूनिया तथा आकसरा में सलजूक़ राज्य स्थापन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया वे रोमन सलजूक़ी उपवंश के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सन् 483 हि. में मलिक शाह के काल में ही क़ज़बीन क्षेत्र में इसमाइलियों की हुकूमत हसन बिन सब्बाह के नेतृत्व में अस्तित्व में आई। उसने अलमौत वादी को अपना मुख्य केंद्र बनाया। इसी काल में मलिक शाह के प्रसिद्ध एवं विद्वान वज़ीर निज़ाम-उल-मुल्क तूसी का वध हुआ। ऐसा माना जाता है कि यह वध तूसी के जनप्रभाव से आतंकित स्वयं मलिक शाह के संकेत पर किया गया लेकिन इसका आरोप हसन बिन सब्बाह के फ़िदाइयों के मत्थे मढ़ा गया। इसी प्रकार कुछ समय बाद सन् 487 हि. में मलिक शाह सलजूक़ भी असामान्य स्थिति में मरा हुआ पाया गया।

मलिक शाह की मौत के उपरांत सलजूक़ साम्राज्य पतनोन्मुख हुआ। मलिक शाह की पत्नी तुर्कान ख़ातून ने अपने लड़के महमूद को सिंहासनारूढ़ करने की चेष्टा की लेकिन मलिक शाह के अन्य पुत्र बर्क़ियारक ने सत्ता हड़प ली। तत्पश्चात् शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

सलजूक़ साम्राज्य का अंतिम महत्त्वपूर्ण शासक सुलतान संजर था। उसने जर्जर सलजूक़ साम्राज्य को सँभाला लेकिन ख़्वारिज़्मशाहियों के लगातार आक्रमण तथा आंतरिक विद्रोहों को न रोक सका। सन् 548 हि. में उसे गज़ तुर्कों ने ही बंदी बना लिया। तीन साल बाद उसने क़ैद से भागकर मर्व में पुनः शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया लेकिन सन् 553 हि. में उसका देहांत हो गया तथा उसके राज्य को पुनः ख़्वारिज़्मशाहियों ने हथिया लिया। यद्यपि सीरिया तथा रोम में सलजूक़ उपवंशों का शासन सातवीं सदी हि. तक चलता रहा।

सलजूक़ियों का शासन ईरान में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण रहा है। साहित्यकारों,

लेखकों, कवियों आदि को उनके दरबार में पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। स्वयं सलजूक़ शासकों ने फ़ारसी तथा अरबी भाषा के साहित्य को प्रोत्साहन दिया। उनके वज़ीर, अमीद-उल-मुल्क कंदरी तथा निज़ाम-उल-मुल्क तूसी महान् विद्वानों में से थे। निज़ाम-उल-मुल्क तूसी ने शिक्षा प्रसार में बहुत योगदान दिया। उसी के नाम पर बल्ख़, निशापूर, हेरात, इस्फ़ाहान एवं बग़दाद आदि में निज़ामिया मदरसे स्थापित किए गए। बग़दाद एवं निशापूर के निज़ामिया मदरसे उस काल के बाद भी विद्वानों के लिए शिक्षा के केंद्र बने रहे। इसी काल में सूफ़ी काव्य की रचना अभूतपूर्व ढंग से प्रारंभ हुई तथा कई सूफ़ी संप्रदायों की स्थापना हुई। यह विषय उल्लेखनीय है कि सलजूक़ पूर्व काल में स्थापित अमारतें (राज्य), जैसे ग़ज़नवी, ग़ौरी, ज़य्यारी आदि में भी फ़ारसी-अरबी साहित्य को प्रशंसनीय प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। संभवतः अधिकतर फ़ारसी साहित्य इसी काल में लिखा गया जिसके वर्णन के लिए फ़ारसी साहित्य संबंधी अध्याय का पाठ आवश्यक है।

मुग़ल-आक्रमण पश्चात् ईरान का इतिहास

ईलख़ानी मुग़ल एवं तैमूरी वंश का राज्य काल–ख़्वारिज़मशाहियों द्वारा पुनः स्थापित राज्य मुग़लों (मंगोलों) के आक्रमण के कारण शीघ्र ही पुनः पतनोन्मुख हुआ। उत्तरी ईरान का बृहत् भाग सन् 616 हि. में प्रारंभ हुए चंगेज़ ख़ाँ के आक्रमणों से त्रस्त एवं वीरान हो चुका था। ख़्वारिज़मशाही शासक सुलतान मुहम्मद ख़्वारिज़मशाह इधर-उधर भागता रहा तथा अंत में आशूरराह द्वीप में जाकर मर गया। उसके पुत्र जलालुद्दीन ने मुग़लों के विरोध की असफल चेष्टा की। सन् 621 हि. में ख़ुरासान में पूरी तरह लूटमार एवं विनाश का वातावरण फैलाने के उपरांत चंगेज़ ख़ाँ इस क्षेत्र को अपने पुत्र तोली को सौंपकर स्वयं मुगलिस्तान (मंगोलिया) वापस चला गया जहाँ दो वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई। कुछ वर्ष बाद ही चंगेज़ ख़ाँ के दूसरे लड़के उग़ताई ने तोली से सत्ता हड़प ली तथा शासनाध्यक्ष बन बैठा।

मंगू क़ाआन ने अपने भाई हलाकू को इसमाइली क़िलों तथा ईरान के अन्य महत्त्वपूर्ण शहरों को अधिकार में लेने के लिए ईरान रवाना किया। इसमाइलियों ने चंगेज़ ख़ाँ के काल के अनुभवों के आधार पर शीघ्र ही हलाकू को अपने क़िले समर्पित कर दिये। वस्तुतः हलाकू के काल में इसमाइलियों का संपूर्ण विनाश हुआ। इसके साथ-साथ सन् 656 हि. में हलाकू ने बग़दाद पर भी आक्रमण किया। अब्बासी ख़लीफ़ा का बड़ी निर्दयतापूर्वक वध किया तथा अब्बासी ख़िलाफ़त का पूर्णतः उन्मूलन कर दिया। यह घटना इसलामी इतिहास के लिए ही नहीं बल्कि मानव इतिहास में भी सबसे दर्दनाक एवं पीड़ाजनक घटना मानी जाती है। हलाकू का जुनून इतने पर भी शांत नहीं हुआ। उसकी सेनाओं ने बग़दाद से अलीपो और दमिश्क पर भी हमला किया तथा वहाँ की अनेक भव्य मस्जिदों को मिट्टी में मिला दिया। अभी हलाकू और आगे बढ़ना चाहता था परंतु मंगू ख़ाँ के देहांत की सूचना पाकर वह वापस लौटने पर बाध्य हो गया। वापस पहुँचकर वह सिंहासनारूढ़ हुआ लेकिन शासन की बागडोर उसके हाथों में अधिक न टिक सकी और वह सन् 663 हि. में स्वयं द्वारा स्थापित नई राजधानी 'मराग़ा' में मर गया।

उसकी मौत के उपरांत ईरान में ईलख़ानी वंश के अबाकाख़ान का शासन काल प्रारंभ हुआ। उसके अतिरिक्त इस राजवंश के प्रसिद्ध शासक ग़ाज़ान एवं अलजाई थे। अहमद तकुदार प्रथम ईलख़ानी सुलतान था जिसने इसलाम

धर्म अपनाया तथा अपना नाम अहमद रखा। दो वर्षों के बाद उसके भतीजे अरग़ून ने उसका वध कर स्वयं को सुलतान घोषित कर दिया। अरग़ून की हुकूमत आठ वर्ष तक रही। उसके काल में चाव (काग़ज़ी मुद्रा) का प्रचलन प्रारंभ हुआ। सन् 694 हि. में इस राजवंश का प्रमुख शासक ग़ाज़ान ख़ान सुलतान बना। उसका काल आर्थिक एवं प्रशासनिक सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। अंतिम सुलतान अबुसईद बहादुर ख़ान था जिसके काल में सरबीदारान नामक शिआओं का विद्रोह शुरू हुआ। मुगलों के आपसी मतभेद एवं लड़ाइयों ने इस प्रकार के विद्रोहों को ईरान के अन्य भागों में फैलने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। इसी के काल में ग़ौरकानी सरदार अमीर तैमूर ने मंगोलिया आदि पर विजय प्राप्त कर ख़ुरासान पर आक्रमण किया। उसने तीन वर्ष तक निरंतर आक्रमण कर ईरान के प्रमुख भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। तीन वर्ष तक ईरान में लूटमार करने के बाद वह समरक़ंद में तूक़्तमतश ख़ान के विद्रोह का दमन करने के लिए वापस गया। कुछ समय बाद उसने पुनः सात वर्षों तक ईरान को अपने लगातार आक्रमणों एवं लूटमार का निशाना बनाया तथा लघु एशिया तक जा पहुँचा जहाँ सुलतान ईलदुरम बायज़ीद तथा अमीर तैमूर के मध्य अंकारा की प्रसिद्ध लड़ाई हुई। इसमें तैमूर ने विजय प्राप्त की तथा उस्मानी सुलतान को बंदी बनाया गया। तैमूर के आदेश पर अनातोली के शिआओं को तुर्किस्तान की ओर खदेड़ दिया गया। यही लोग बाद में क़ज़लबाशियों के नाम से विख्यात हुए। कहा जाता है कि ख़ाजा सफ़वी की सिफ़ारिश पर अमीर तैमूर ने इन्हें रियायतें प्रदान कीं। इसीलिए तदुपरांत स्थापित सफ़वी काल में ये क़ज़लबाश सफ़वी शासकों के प्रमुख विश्वासपात्र एवं सुरक्षाकर्मी बने रहे। सन् 807 हि. में तैमूर के देहांत के उपरांत इस वंश के प्रसिद्ध सुलतानों में शाहरुख़, उलुग बेग और अबु सईद थे। तैमूरियों की सल्तनत दसवीं सदी हि. के अंत तक रही। उनके पतन काल में ईरान में अन्य कई छोटी-छोटी हुकूमतें, जैसे जलायरी, सरबीदारी, आले-किरत, मुज़फ़्फ़री आदि भी अस्तित्व में आईं। इन सबका शनैः-शनैः पतन सफ़वी शासन काल में हुआ।

मुगलों और तैमूरियों के प्रथम आक्रमण तथा बाद के शासन काल में ईरानी संस्कृति एवं उसकी धरोहर को असीम आघात पहुँचा। बहुमूल्य पुस्तकालय अग्नि की भेंट चढ़ गए, असंख्य विद्वानों को मौत के घाट उतार दिया गया। धार्मिक स्थलों को घोड़ों के पाँवों तले रौंदकर अनादृत और अपवित्र किया गया। यद्यपि इन्हीं मुगलों के बाद के काल में ईरानी संस्कृति एवं साहित्य का पुनरुत्थान उस काल के महान् साहित्यकारों, जैसे शेख़ सादी, हाफ़िज़ एवं मौलाना रूम आदि ने किया। इन कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के द्वारा ईरानी समाज का मानवता पर विश्वास पुनः स्थापित किया। ईरानी संस्कृति के इतिहास में उनका यह योगदान प्रशंसनीय है।

सफ़वी वंश–सफ़वी वंश से क़ाजार वंश के पतन तक शाह इसमाइल सफ़वी ने सन् 907 हि. में तबरीज़ में क़ज़लबाशियों की सहायता तथा शेख़ सफ़ीउद्दीन अर्दबीली के मार्गदर्शन में केंद्रीय शक्ति पर आधारित प्रथम शिआ राज्य स्थापित किया। सफ़वी राज्य की स्थापना से शिआ मत को राजकीय मान्यता प्राप्त हुई। धर्म एवं राजनीति दोनों से जुड़ा हुआ सफ़वी शासन पड़ोसी सुन्नी शासकों को बिल्कुल स्वीकार्य न था। विशेषतः पूर्व के उज़बेक तथा पश्चिम में उस्मानी शासकों ने लगातार रुकावटें शुरू करने के उद्देश्य से शाह इसमाइल पर हर ओर से दबाव बढ़ाना शुरू किया। प्रारंभ में तो शाह इसमाइल को विजय प्राप्त हुई लेकिन उस्मानी शाह सलीम ने 'चालदारान' के युद्ध में शाह इसमाइल को परास्त किया। यद्यपि यह पराजय तो सफ़वियों के लिए इतनी हानिकारक

मैदाने-नक़्शे-जहान, काख़े-आली क़ापू (इस्फ़ाहान)

नहीं थी लेकिन आंतरिक विरोध तथा शाह इसमाइल की 38 वर्ष की आयु में आकस्मिक मृत्यु ने सफ़वी शासन को प्रारंभ में ही हिला दिया। शाह इसमाइल के सुपुत्र शाह तहमास्व (तहमास्प) को आगामी बीस साल तक उज़बेक एवं उस्मानी सुलतानों से सफ़वी शासन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए लड़ते रहना पड़ा। अमासिया के शांति समझौते के उपरांत उसके शासन काल में कुछ समय के लिए शांति का वातावरण रहा। शाह तहमास्व की मृत्यु के उपरांत उस्मानी शासकों ने आक्रमण का सिलसिला पुनः आरंभ किया। लेकिन नये सफ़वी शासक शाह अब्बास प्रथम ने उनका मुँहतोड़ जवाब दिया। उसके राज्यकाल में सफ़वियों को एक मज़बूत शासन व्यवस्था एवं सुदृढ़ सैन्य शक्ति के निर्माण में सफलता प्राप्त हुई। उसके ही काल में स्थापत्य कला, शिआ मत संबंधी धार्मिक साहित्य तथा चित्रकारी को अभूतपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए कई कार्यों की शुरुआत की, जैसे यूरोपीय देशों से भी संबंध स्थापित करके उनके दूतों के साथ समझौता किया। कुछ मतानुसार यूरोपीय देशों ने इन समझौतों से केवल स्वयं को लाभप्रद स्थिति में रखा तथा ईरान को उससे लेशमात्र भी लाभ न पहुँचा।

शाह अब्बास प्रथम का शासनकाल–इस काल में सफ़वी राज्य का वैभव तथा समृद्धि चरम सीमा पर थी। उसकी मृत्यु सफ़वी वंश के पतन का कारण बनी। आगामी शासक दरबारियों के षड्यंत्रों का शिकार बने। विवेकहीन सफ़वी शासक विशेषतः शाह सफ़वी के काल में कुशल एवं शक्तिशाली सेनापतियों, सामंतों एवं मंत्रियों के क़त्ल हुए। ऐसी परिस्थितियों ने अफ़ग़ान क़बीले के सरदार महमूद अफ़ग़ान को सफ़वियों की राजधानी इस्फ़ाहान पर आक्रमण करने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। 'गुलबादाद' की जंग में सफ़वी सेना को अफ़ग़ानों ने परास्त किया तथा आने वाले कई वर्षों तक अफ़ग़ानों की लूटमार जारी रही। दूसरी ओर उस्मानी शासकों के आक्रमण शुरू हो गए। इनसे बचने के लिए सफ़वी शासक शाह तहमास्व द्वितीय ने तेहरान के रास्ते माज़िंदरान की ओर पलायन किया। इस्फ़ाहान में महमूद अफ़ग़ान का पुत्र अशरफ़ अफ़ग़ान सिंहासनारूढ़ हुआ। उस्मानी एवं रूसियों ने ईरान के विभिन्न भागों को आपस में बाँट लिया अर्थात् ईरान पुनः विभिन्न शक्तियों के बीच पिसता रहा तथा कोई प्रभावशाली केंद्रीय शक्ति शेष न रही।

इसी दौरान नादिर क़ुली ख़ान उर्फ़ नादिर शाह ने शाह तहमास्व सफ़वी का साथ देकर पहले मशहद एवं

ख़ुरासान पर अधिकार किया तथा बाद में इस्फ़ाहान पर सफ़वी शासन को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयास किया। दंदानकान (दामग़ान) में महमूद अफ़ग़ान के उत्तराधिकारी अशरफ़ अफ़ग़ान को हरा अफ़ग़ानों को उस क्षेत्र से खदेड़ा तथा सफ़वियों को फिर से इस्फ़ाहान पर अधिकार करने में पूर्ण सहयोग दिया। इसी प्रकार नादिर क़ुली ख़ान ने ईरान के अन्य भागों में रूसियों तथा उस्मानी सेनाओं से लड़ाई की। उस्मानियों से परास्त होता देखकर सफ़वी शासक शाह तहमास्ब ने उनको आज़रबाईजान का क्षेत्र देकर शांति समझौता किया लेकिन नादिरशाह ने शाह तहमास्ब के इस समझौते को स्वीकार नहीं किया और सफ़वी शासक को गद्दी से उतारकर स्वयं सत्ता सँभाल ली।

अफ़शार वंश–कुछ समय बाद सन् 1146 हि. में मर्ग़ान में उसने स्वयं को नादिरशाह अफ़शार की उपाधि से सुशोभित किया तथा अफ़शार वंश के राज्य की स्थापना की। तीन वर्ष के अल्पकाल में नादिरशाह ने बग़दाद से लेकर देहली तक आक्रमण किये तथा कई क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त किया। नादिरशाह के क्रूर व्यवहार ने उसके पुत्रों एवं संबंधियों को उसका शत्रु बना दिया। जब उसने अपने पुत्र रिज़ा क़ुली मिर्ज़ा, जिसने नादिरशाह का वध करना चाहा था, गिरफ़्तार कर मारने का आदेश दिया तब रिज़ा क़ुली के समर्थकों ने नादिरशाह को ही एक षड्यंत्र रचकर क़त्ल कर दिया।

ज़ंद वंश–सन् 1163 हि. में करीम ख़ान ज़ंद ने नादिरशाह की अफ़शारी हुकूमत के ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा खड़ा कर दिया। उसने 'ज़ंद' वंश के नाम से फ़ारस में अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंश का प्रभाव क्षेत्र अधिकांशतः फ़ारस ही रहा तथा राजधानी शीराज़, जहाँ का वकील बाज़ार आज भी उस काल की याद दिलाता है। ज़ंद वंश का राज्य काल लगभग 30 वर्षों तक रहा।

क़ाजार (क़ाचार) वंश–सन् 1193 हि. में करीम ख़ान ज़ंद की मृत्यु के उपरांत आग़ा (आक़ा) मुहम्मद ख़ान क़ाजार (क़ाचार) ने 'क़ाजार वंश' की स्थापना की तथा अपनी राजधानी शीराज़ से हटाकर अस्तराबाद में बनाई। क़ाजार वंश का यह संस्थापक बहुत क्रूर था। उसने अनेक विद्रोही सरदारों को मौत के घाट उतारकर पुनः ईरान में केंद्रीय शक्ति की स्थापना की। शायद यह केवल क्रूरता एवं अत्याचार द्वारा ही संभव था। लेकिन ईरान में अभी वह पूर्णतः राजनीतिक स्थायित्व नहीं ला पाया था कि विद्रोही सरदार सादिक ख़ान शलाकी के नेतृत्व में रचे गए षड्यंत्र में फँस गया तथा मौत के घाट उतार दिया गया। उसका राज्यकाल लगभग तीन वर्ष तक रहा। उसके स्थान पर फ़तह अली शाह नया क़ाजार शासक बना। उसके 38 वर्षीय राज्यकाल में दरबारी षड्यंत्रों का सिलसिला निरंतर जारी रहा। अति दूरदर्शी तथा बुद्धिमान वज़ीर मिर्ज़ा बुज़ुर्ग फ़राहानी के कारण शाही दरबार कुछ सीमा तक आंतरिक एवं बाह्य षड्यंत्रों से सुरक्षित रहा। लेकिन रूसियों और अंग्रेज़ों के आक्रमण ईरानी सीमाओं पर लगातार जारी रहे तथा रूसियों एवं अंग्रेज़ों के समर्थक दरबारी उनका साथ देते रहे। फ़तह अली शाह के पुत्र अब्बास मिर्ज़ा ने उनके जाल में फँसकर गुलिस्तान तथा तुर्कमानचाई के समझौते पर हस्ताक्षर कर ईरान के (वर्तमान सीमावर्ती क्षेत्र) अर्मिनिस्तान, नख़जवान, गुर्जिस्तान तथा दाग़िस्तान के क्षेत्रों को सदा के लिए गँवा दिया।

तीसरे शासक मुहम्मद शाह क़ाजार का 14 वर्षीय काल भी इसी चक्रव्यूह में फँसा रहा। विदेशी शक्तियों

द्वारा रचाए गए जाल का शिकार उस दौर का सबसे प्रमुख एवं विद्वान मंत्री क़ायम-मक़ाम फ़राहानी बना। सन् 1246 हि. में नासिरुद्दीन शाह सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके प्रथम वर्षों की अति दुःखद घटना काशन के फ़ीन बाग़ के हमाम में शाह के संकेत पर की गई अमीर कबीर की निर्मम हत्या है। यह हत्या भी विदेशी शक्तियों द्वारा रचे गए षड्यंत्रों का एक भाग थी। हालांकि नासिरुद्दीन शाह ने अमीर कबीर के सुधारों को मिर्ज़ा आग़ा ख़ान नूरी के द्वारा क्रियान्वित करने का असफल प्रयास किया लेकिन नासिरुद्दीन शाह का काल अंग्रेज़ों तथा रूसियों के षड्यंत्रों में बुरी तरह जकड़ा रहा। देश के अंदर ग़रीबी-भुखमरी का वातावरण था। विदेशी कर्ज़ों के तले देश दबता जा रहा था। राजनीतिक सुधार की ओर उठाया गया हर क़दम रुकावटों के फैलाए हुए जाल में दबकर रह जाता था। नासिरुद्दीन शाह के मंत्री मिर्ज़ा अली असग़र ख़ान अताबक उर्फ़ अमीन उस्सुलतान का वर्चस्व अति हानिकारक साबित हुआ। नासिरुद्दीन शाह ने विदेशी कर्ज़ों के बल पर विदेश यात्राएँ कीं तथा ईरान के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के ठेके अंग्रेज़ों तथा रूसियों को दिए। इस प्रकार के कार्यों से आधुनिकीकरण कम हुआ तथा देश को नुक़सान अधिक उठाना पड़ा। सन् 1861 ई. में अंग्रेज़ों के सफल प्रयास से अफ़ग़ानिस्तान स्वतंत्र राज्य के रूप में ईरान से पृथक् हुआ। नासिरुद्दीन शाह की देश विरोधी नीति का विरोध ईरान में हर दिशा से होना शुरू हो गया। जन साधारण में राजनीतिक जागृति का आरंभ इसी काल से हुआ। नासिरुद्दीन शाह जब अपने राज्यकाल की स्वर्ण जयंती की तैयारी की योजना बनाने में व्यस्त था तो उसी के दरबारियों में मिर्ज़ा रजाई किरमानी तथा उसके सह-विचारकों ने देश को दुर्दशा से बचाने के लिए शाह को क़त्ल करने की योजना बनाई। परिणामस्वरूप स्वर्ण जयंती से दो वर्ष पूर्व ही नासिरुद्दीन शाह का क़त्ल कर दिया गया। कुछ मतानुसार राजनीतिक जागृति से उत्पन्न आंदोलन, मशरूतियत (संवैधानिक व्यवस्था स्थापना, संवैधानिकतावाद) की उचित माँगों को अस्वीकार करना तथा आर्थिक व्यवस्था को चरमरा देना नासिरुद्दीन शाह के क़त्ल के मुख्य कारण थे।

आगामी क़ाजारी शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन का व्यक्तित्व अति निर्बल एवं निकट दृष्टिक था। मशरूतियत का आंदोलन दिन-प्रतिदिन बलशाली होता गया। लोगों में अपने संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति का अहसास तथा जनसाधारण में फैली राजनीतिक स्फूर्ति के वातावरण ने सन् 1327 हि. (सन् 1907 ई.) में मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह को संविधान स्थापन संबंधी फ़रमान पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया। ईरान में प्रथम संसद की स्थापना हुई लेकिन नए बादशाह मुहम्मद अली शाह ने रूसियों की मंत्रणा तथा अंग्रेज़ों की चश्मपोशी नीति पर भरोसा कर प्रथम संसद को तोप से ही उड़वा दिया। इस घटना के परिणामस्वरूप संविधान समर्थक नेताओं ने पुनः प्रचंड आंदोलन आरंभ कर दिया तथा मुहम्मद शाह को ईरान से रूस भाग जाने पर बाध्य कर दिया। इसी समय रूस की क्रांति ने अंग्रेज़ों को स्वतंत्रता से राजनीतिक कार्यों में अधिक हस्तक्षेप करने का अवसर दे दिया। संविधान संबंधी आंदोलनकारियों के समर्थक अहमद शाह क़ाजार ने शासन की बागडोर सँभाली। लेकिन क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के दबाव में वह ईरान के हित की सुरक्षा न कर पाया। परिणामस्वरूप देश के आंतरिक भागों में फैला हुआ अस्थिरता का वातावरण बिगड़ता गया।

पहलवी वंश—इसी वातावरण में अंग्रेज़ों की सहायता से रिज़ाशाह (कबीर) ने पहले मुहम्मद अली फ़ुरूग़ी के साथ कामचलाऊ सरकार के प्रभारी के रूप में कार्य किया लेकिन कुछ ही समय बाद (सन् 1925 ई. में) स्वयं को सम्राट घोषित कर पहलवी राज्य वंश की स्थापना की जिससे क़ाजारियों का लगभग 130 वर्ष पुराना शासन

की अलवी हुकूमत के विरुद्ध कार्य करने के लिए तत्पर रहते थे।

इस शासन का संस्थापन इमाम हसन के वंशज मुहम्मद बिन इब्राहिम के पथप्रदर्शन में हसन बिन ज़ैद ने किया और वही प्रथम शासनाध्यक्ष बने। सन् 270 हि. में हसन बिन ज़ैद के देहांत के उपरांत बाह्य एवं आंतरिक ख़तरे बढ़ गए। यहाँ तक कि सामानियों के सरदार मुहम्मद बिन हारून सरख़सी ने अलवी दायी (द्वितीय) का वध कर दिया तथा तबरिस्तान का क्षेत्र आगामी तेरह वर्षों तक सामानी शासन के प्रभुत्व में रहा। तदुपरांत नासिर कबीर के नाम से विख्यात नासिर उतरूष ने पुनः तबरिस्तान को सामानियों के पंजे से स्वतंत्र करा अलवी शासन का पुनःस्थापन किया। लेकिन आंतरिक विद्रोहों ने उसे भी चैन से न रहने दिया। उधर सामानी सरदार भी लगातार तबरिस्तानी शासन के लिए कठिनाइयाँ खड़ी करते रहे। अंततः सन् 316 हि. में सामानी समर्थक सरदार इस्फ़ार बिन शूरवीय एवं मर्दाविज ज़य्यारी ने अलवी वंश के अलवी दायी हसन बिन क़ासिम एवं माकान बिन काकी को परास्त किया तथा हसन बिन क़ासिम इस लड़ाई में मारा गया। तबरिस्तान पुनः सामानी राज्य के अधीन आ गया तथा अलवी शासन का पूर्णतया पतन हुआ।

आले-बूइए (बूइए) वंश–मान्यता है कि बूइए नामक व्यक्ति का संबंध अंतिम सासानी शासक यज़्दगुर्द तृतीय से था तथा अन्य मतानुसार उसका संबंध ग़ौर से था। इसलामी काल का यह प्रथम शिआ शासक था जिसे अब्बासी ख़लीफ़ा ने इसके शक्तिशाली प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए मान्यता प्रदान की। क़ज़वीन में दीलमान प्रांत के गाँव कियाकीलश के निवासी आले-बूइए के तीन पुत्र अली, हसन एवं अहमद आरंभ में तबरिस्तान के अलवी सरदार माकान बिन काकी के समर्थक थे लेकिन अलवी शासन के पतन के उपरांत इन्होंने मर्दाविज ज़य्यारी का साथ दिया। उसने अली बिन बूइए को इराक़े-अजम में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। कुछ समय बाद अली ने अपने भाइयों के साथ एकजुट हो ज़य्यारी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर आले-बूइए के राज्य क्षेत्र का संस्थापन किया। आरंभ में तो अब्बासी ख़लीफ़ा अत्यधिक रुष्ट था लेकिन अली बिन बूइए की बढ़ती हुई शक्ति को ध्यान में रखते हुए उसने इस शिआ राज्य को मान्यता प्रदान की।

आले-बूइए शासकों में सबसे प्रसिद्ध राज्यकाल अज़्दुद्दौला दीलमी का था। उसने न केवल अपने राज्य में ही शिआ मत का प्रचार एवं प्रसार किया बल्कि बग़दाद के कर्ख़ मुहल्ले में भी शिआ मतानुयायियों के लिए भी अनुकूल एवं सुरक्षित वातावरण बनाया। इसके अतिरिक्त उसने बग़दाद के शिआ आलिमों, जैसे शेख़ मुफ़ीद, सैयद मुर्तज़ा एवं सैयद रज़ी आदि को पूर्ण समर्थन प्रदान कर सुन्नी धर्माचार्यों के साथ विभिन्न विषयों पर विचार-मंत्रणा (मनाज़िरा) आयोजित करने का वातावरण बनाया ताकि शिआ मत के सिद्धांतों को पूर्णतः सुरक्षा मिल सके।

आले-बूइए का प्रभुत्व मलिक रहीम के कमज़ोर एवं निर्बल राज्य काल तक ही सीमित रहा। बग़दाद में ख़लीफ़ा के समर्थक सलजूक़ी सरदार तुग़रिल बेग के आगमन के उपरांत आले-बूइए तथा ईरान के अन्य क्षेत्रों से उसके प्रभुत्व का अंत हुआ।

ग़ज़नवी शासनकाल–सामानी वंश के अंतिम शासकों ने अपनी सेना को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से तुर्क ग़ुलामों को अपनी सैन्य व्यवस्था में शामिल किया। इनमें अल्पतगीन नामक तुर्क दास ने अपने कौशल एवं वीरता के बल से सामानी दरबार में सेनाध्यक्ष का पद प्राप्त किया। अमीर अब्दुलमलिक की मृत्यु के उपरांत उसने

स्वयं को शासनाध्यक्ष घोषित करने का प्रयत्न किया। नए सामानी अमीर, अमीर मंसूर ने न केवल उसे पदच्युत किया बल्कि उससे नीशापूर का क्षेत्र भी वापस ले लिया। वह अमीर के रोष से बचने के लिए ग़ज़नी की ओर भाग गया। जब सामानी सेना उसके दमन के लिए ग़ज़नी पहुँची तो उसने अपनी छोटी सी टुकड़ी से सामानी सेना को पराजित किया तथा ग़ज़नी में स्वयं का शासन स्थापित किया। अल्पतगीन की मृत्यु के उपरांत उसके उत्तराधिकारियों में सिंहासन के लिए हुई लड़ाई में उसका दामाद सुबुक्तगीन विजयी रहा तथा सन् 366 हि. में सिंहासनारूढ़ हुआ।

इस वंश का सबसे प्रसिद्ध अमीर महमूद ग़ज़नवी था जिसने सर्वप्रथम अमीर के स्थान पर 'सुलतान' शब्द का प्रयोग अपने नाम के साथ किया। लेकिन उसने ख़लीफ़ा से अपने संबंध सम रखे। उसके राज्य काल में ग़ज़नवी राज्य सीमा का प्रसार ईरान की पश्चिमी सीमा तक रहा। उसके शासन की मुख्य उपलब्धियों में इसमाइली शिआओं का नरसंहार, हिंदुस्तान पर आक्रमण तथा जिहाद के नाम पर की गई लड़ाइयाँ प्रमुख हैं। उसने अपने दरबार को अति वैभवशाली बनाने का सफल प्रयास किया। उसकी राजधानी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का विशाल केंद्र रही। लेकिन उसके निष्ठुर व्यवहार का शिकार फ़िरदौसी भी बना। उसकी मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों, मुहम्मद एवं मसऊद में सिंहासन हथियाने के लिए झगड़े हुए। अंत में दरबारियों के समर्थन से मसऊद सुलतान बना तथा अपने भाई मुहम्मद को अंधा करवा दिया। इसके अतिरिक्त मुहम्मद के समर्थक एवं प्रसिद्ध वज़ीर हसनक को फाँसी पर चढ़ा दिया।

सलजूक़ी सरदारों ने सुलतान मसऊद को 'दंदानकाक' के युद्ध में पराजित कर ग़ज़नवी वर्चस्व को जर्जर कर दिया। बाद में सुलतान मसऊद ने हिंदुस्तान पर आक्रमण कर वहाँ से आर्थिक लाभ प्राप्त करना चाहा लेकिन उसके पिता के समर्थकों ने इस प्रयत्न को निष्फल बना दिया तथा उसका वध भी कर दिया। सन् 582 हि. तक ग़ज़नवी वंश का निर्बल एवं शक्तिहीन राज्य अस्तित्व में रहा।

उल्लिखित सभी राजवंशों से अधिक शक्तिशाली साम्राज्य सलजूक़ी साम्राज्य था। उनका साम्राज्य भी सासानियों भाँति ईरान की सीमाओं से परे शाम (सीरिया) तक फैल गया।

सलजूक़ वंश–सलजूक़ गज़ तुर्क नस्ल से संबंधित थे। अन्य तुर्क क़बीलों की तरह वे भी तुर्किस्तान के आसपास के क्षेत्र से कूच कर बुख़ारा, समरक़ंद एवं ज़द के पहाड़ी क्षेत्रों में आबाद हुए। इस वंश के प्रमुख सलजूक़ बिन लुक़मान के पाँच पुत्र थे। जब इन्होंने धीरे-धीरे अपना प्रभाव ग़ज़नवी राज्य में फैलाना शुरू किया तब महमूद ग़ज़नवी ने इनमें से इस्राइल को बंदी बना लिया तथा सलजूक़ियों को बुख़ारा से खदेड़ दिया। सलजूक़ का दूसरा पुत्र मिकाईल परिवार प्रमुख था। उसकी मृत्यु के उपरांत उसके बेटे चंगरी एवं तुगरिल ने प्रवासी सलजूक़ियों को एकत्रित किया और ज़द से बुख़ारा को कूच कर गया। उसने ग़ज़नवी-सरदार सबवाशी को हरा ख़ुरासान पर कब्ज़ा कर लिया। यह सलजूक़ियों की राज्य स्थापना का प्रारंभ था। इसके उपरांत तुगरिल के नेतृत्व में सलजूक़ सेना ने महमूद ग़ज़नवी को परास्त किया तथा ग़ज़नवियों के अधिकांश राज्य क्षेत्र को सलजूक़ राज्य में परिवर्तित कर दिया। सलजूक़ परिवार ने कुशल व्यवस्था स्थापित करने के लिए पूरे क्षेत्र को अपने भाई-भतीजों में बाँट लिया। इनमें सबसे उल्लेखनीय तुग़रिल बेग है जिसका नाम अबु अली हसन बिन मूसा बिन सलजूक़ था। उसने ख़ुरासान

में अपनी हुकूमत क़ायम करने के बाद गुर्गान, तबरिस्तान तथा संपूर्ण ख़्वारिज़्म एवं आज़रबाईजान पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

सन् 447 हि. में अब्बासी ख़लीफ़ा अलक़ायम बिल्लाह के निमंत्रण पर तुगरिल बग़दाद पहुँचा जहाँ आले-बूइए के अंतिम अमीर ने अपना वर्चस्व स्थापित किया हुआ था। तुग्रिल ने आले-बूइए के प्रभुत्व को समाप्त किया। ख़लीफ़ा ने प्रसन्न होकर सलजूक़ परिवार से वैवाहिक संबंध स्थापित किये। तुगरिल की अधिकांश उपलब्धियाँ उसके कुशल वज़ीर अमीदुलमुल्क कंदरी के कारण थीं।

तुगरिल की मृत्यु के उपरांत सलजूक़ परिवार में सिंहासन के लिए युद्ध हुए। अंततः आलिब (अल्प) अर्सलान ने सलजूक़ साम्राज्य की बागडोर सँभाली। उसके नेतृत्व में सलजूक़ साम्राज्य पूर्वी रोम तक फैल गया। इस प्रकार तुगरिल बेग के अधूरे सपनों को आलिब अर्सलान ने साकार किया। उसी के काल में संपूर्ण ईरान सलजूक़ साम्राज्य के एक शासक की छत्रछाया में रहा।

सन् 465 हि. में जब आलिब अर्सलान अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर था, यूसुफ़ ख़्वारिज़्म नामक व्यक्ति ने उसकी हत्या कर दी। उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का जलालउद्दीन अबुल फ़तह उर्फ़ मलिक शाह सलजूक़ी सत्ता का स्वामी बना। उसके काल में सीरिया एवं अलीपो पर सलजूक़ी सेनाओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वहाँ के सलजूक़ परिवार के शासक शामी (सीरयाई) सलजूक़ कहलाए। इसी प्रकार जिन्होंने रोम, कूनिया तथा आकसरा में सलजूक़ राज्य स्थापन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया वे रोमन सलजूक़ी उपवंश के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सन् 483 हि. में मलिक शाह के काल में ही कज़वीन क्षेत्र में इसमाइलियों की हुकूमत हसन बिन सब्बाह के नेतृत्व में अस्तित्व में आई। उसने अलमौत वादी को अपना मुख्य केंद्र बनाया। इसी काल में मलिक शाह के प्रसिद्ध एवं विद्वान वज़ीर निज़ाम-उल-मुल्क तूसी का वध हुआ। ऐसा माना जाता है कि यह वध तूसी के जनप्रभाव से आतंकित स्वयं मलिक शाह के संकेत पर किया गया लेकिन इसका आरोप हसन बिन सब्बाह के फ़िदाइयों के मत्थे मढ़ा गया। इसी प्रकार कुछ समय बाद सन् 487 हि. में मलिक शाह सलजूक़ भी असामान्य स्थिति में मरा हुआ पाया गया।

मलिक शाह की मौत के उपरांत सलजूक़ साम्राज्य पतनोन्मुख हुआ। मलिक शाह की पत्नी तुर्कान ख़ातून ने अपने लड़के महमूद को सिंहासनारूढ़ करने की चेष्टा की लेकिन मलिक शाह के अन्य पुत्र बरकियारक ने सत्ता हड़प ली। तत्पश्चात् शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

सलजूक़ साम्राज्य का अंतिम महत्त्वपूर्ण शासक सुलतान संजर था। उसने जर्जर सलजूक़ साम्राज्य को सँभाला लेकिन ख़्वारिज़्मशाहियों के लगातार आक्रमण तथा आंतरिक विद्रोहों को न रोक सका। सन् 548 हि. में उसे गज़ तुर्कों ने ही बंदी बना लिया। तीन साल बाद उसने क़ैद से भागकर मर्व में पुनः शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया लेकिन सन् 553 हि. में उसका देहांत हो गया तथा उसके राज्य को पुनः ख़्वारिज़्मशाहियों ने हथिया लिया। यद्यपि सीरिया तथा रोम में सलजूक़ उपवंशों का शासन सातवीं सदी हि. तक चलता रहा।

सलजूक़ियों का शासन ईरान में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण रहा है। साहित्यकारों,

में अपनी हुकूमत क़ायम करने के बाद गुर्गान, तबरिस्तान तथा संपूर्ण ख़्वारिज़्म एवं आज़रबाईजान पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

सन् 447 हि. में अब्बासी ख़लीफ़ा अलक़ायम बिल्लाह के निमंत्रण पर तुग़रिल बग़दाद पहुँचा जहाँ आले-बूइए के अंतिम अमीर ने अपना वर्चस्व स्थापित किया हुआ था। तुग़रिल ने आले-बूइए के प्रभुत्व को समाप्त किया। ख़लीफ़ा ने प्रसन्न होकर सलजूक़ परिवार से वैवाहिक संबंध स्थापित किये। तुग़रिल की अधिकांश उपलब्धियाँ उसके कुशल वज़ीर अमीदुलमुल्क कंदरी के कारण थीं।

तुग़रिल की मृत्यु के उपरांत सलजूक़ परिवार में सिंहासन के लिए युद्ध हुए। अंततः आलिब (अल्प) अर्सलान ने सलजूक़ साम्राज्य की बागडोर सँभाली। उसके नेतृत्व में सलजूक़ साम्राज्य पूर्वी रोम तक फैल गया। इस प्रकार तुग़रिल बेग के अधूरे सपनों को आलिब अर्सलान ने साकार किया। उसी के काल में संपूर्ण ईरान सलजूक़ साम्राज्य के एक शासक की छत्रछाया में रहा।

सन् 465 हि. में जब आलिब अर्सलान अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर था, यूसुफ़ ख़्वारिज़्म नामक व्यक्ति ने उसकी हत्या कर दी। उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का जलालउद्दीन अबुल फ़तह उर्फ़ मलिक शाह सलजूक़ी सत्ता का स्वामी बना। उसके काल में सीरिया एवं अलीपो पर सलजूक़ी सेनाओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वहाँ के सलजूक़ परिवार के शासक शामी (सीरयाई) सलजूक़ कहलाए। इसी प्रकार जिन्होंने रोम, क़ूनिया तथा आकसरा में सलजूक़ राज्य स्थापन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया वे रोमन सलजूक़ी उपवंश के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सन् 483 हि. में मलिक शाह के काल में ही क़ज़वीन क्षेत्र में इसमाइलियों की हुकूमत हसन बिन सब्बाह के नेतृत्व में अस्तित्व में आई। उसने अलमौत वादी को अपना मुख्य केंद्र बनाया। इसी काल में मलिक शाह के प्रसिद्ध एवं विद्वान वज़ीर निज़ाम-उल-मुल्क तूसी का वध हुआ। ऐसा माना जाता है कि यह वध तूसी के जनप्रभाव से आतंकित स्वयं मलिक शाह के संकेत पर किया गया लेकिन इसका आरोप हसन बिन सब्बाह के फ़िदाइयों के मत्थे मढ़ा गया। इसी प्रकार कुछ समय बाद सन् 487 हि. में मलिक शाह सलजूक़ भी असामान्य स्थिति में मरा हुआ पाया गया।

मलिक शाह की मौत के उपरांत सलजूक़ साम्राज्य पतनोन्मुख हुआ। मलिक शाह की पत्नी तुर्कान ख़ातून ने अपने लड़के महमूद को सिंहासनारूढ़ करने की चेष्टा की लेकिन मलिक शाह के अन्य पुत्र बरकियारक ने सत्ता हड़प ली। तत्पश्चात् शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

सलजूक़ साम्राज्य का अंतिम महत्त्वपूर्ण शासक सुलतान संजर था। उसने जर्जर सलजूक़ साम्राज्य को सँभाला लेकिन ख़्वारिज़्मशाहियों के लगातार आक्रमण तथा आंतरिक विद्रोहों को न रोक सका। सन् 548 हि. में उसे गज़ तुर्कों ने ही बंदी बना लिया। तीन साल बाद उसने क़ैद से भागकर मर्व में पुनः शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया लेकिन सन् 553 हि. में उसका देहांत हो गया तथा उसके राज्य को पुनः ख़्वारिज़्मशाहियों ने हथिया लिया। यद्यपि सीरिया तथा रोम में सलजूक़ उपवंशों का शासन सातवीं सदी हि. तक चलता रहा।

सलजूक़ियों का शासन ईरान में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण रहा है। साहित्यकारों,

लेखकों, कवियों आदि को उनके दरबार में पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। स्वयं सलजूक़ शासकों ने फ़ारसी तथा अरबी भाषा के साहित्य को प्रोत्साहन दिया। उनके वज़ीर, अमीद-उल-मुल्क कंदरी तथा निज़ाम-उल-मुल्क तूसी महान् विद्वानों में से थे। निज़ाम-उल-मुल्क तूसी ने शिक्षा प्रसार में बहुत योगदान दिया। उसी के नाम पर बल्ख़, निशापूर, हेरात, इस्फ़ाहान एवं बग़दाद आदि में निज़ामिया मदरसे स्थापित किए गए। बग़दाद एवं निशापूर के निज़ामिया मदरसे उस काल के बाद भी विद्वानों के लिए शिक्षा के केंद्र बने रहे। इसी काल में सूफ़ी काव्य की रचना अभूतपूर्व ढंग से प्रारंभ हुई तथा कई सूफ़ी संप्रदायों की स्थापना हुई। यह विषय उल्लेखनीय है कि सलजूक़ पूर्व काल में स्थापित अमारतें (राज्य), जैसे ग़ज़नवी, ग़ौरी, ज़य्यारी आदि में भी फ़ारसी-अरबी साहित्य को प्रशंसनीय प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। संभवतः अधिकतर फ़ारसी साहित्य इसी काल में लिखा गया जिसके वर्णन के लिए फ़ारसी साहित्य संबंधी अध्याय का पाठ आवश्यक है।

मुग़ल-आक्रमण पश्चात् ईरान का इतिहास

ईलख़ानी मुग़ल एवं तैमूरी वंश का राज्य काल–ख़्वारिज़्मशाहियों द्वारा पुनः स्थापित राज्य मुग़लों (मंगोलों) के आक्रमण के कारण शीघ्र ही पुनः पतनोन्मुख हुआ। उत्तरी ईरान का बृहत् भाग सन् 616 हि. में प्रारंभ हुए चंगेज़ ख़ाँ के आक्रमणों से त्रस्त एवं वीरान हो चुका था। ख़्वारिज़्मशाही शासक सुलतान मुहम्मद ख़्वारिज़्मशाह इधर-उधर भागता रहा तथा अंत में आशूरराह द्वीप में जाकर मर गया। उसके पुत्र जलालुद्दीन ने मुग़लों के विरोध की असफल चेष्टा की। सन् 621 हि. में ख़ुरासान में पूरी तरह लूटमार एवं विनाश का वातावरण फैलाने के उपरांत चंगेज़ ख़ाँ इस क्षेत्र को अपने पुत्र तोली को सौंपकर स्वयं मुग़लिस्तान (मंगोलिया) वापस चला गया जहाँ दो वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई। कुछ वर्ष बाद ही चंगेज़ ख़ाँ के दूसरे लड़के उग़ताई ने तोली से सत्ता हड़प ली तथा शासनाध्यक्ष बन बैठा।

मंगू क़ाआन ने अपने भाई हलाकू को इसमाइली क़िलों तथा ईरान के अन्य महत्त्वपूर्ण शहरों को अधिकार में लेने के लिए ईरान रवाना किया। इसमाइलियों ने चंगेज़ ख़ाँ के काल के अनुभवों के आधार पर शीघ्र ही हलाकू को अपने क़िले समर्पित कर दिये। वस्तुतः हलाकू के काल में इसमाइलियों का संपूर्ण विनाश हुआ। इसके साथ-साथ सन् 656 हि. में हलाकू ने बग़दाद पर भी आक्रमण किया। अब्बासी ख़लीफ़ा का बड़ी निर्दयतापूर्वक बध किया तथा अब्बासी ख़िलाफ़त का पूर्णतः उन्मूलन कर दिया। यह घटना इसलामी इतिहास के लिए ही नहीं बल्कि मानव इतिहास में भी सबसे दर्दनाक एवं पीड़ाजनक घटना मानी जाती है। हलाकू का जुनून इतने पर भी शांत नहीं हुआ। उसकी सेनाओं ने बग़दाद से अलीपो और दमिश्क़ पर भी हमला किया तथा वहाँ की अनेक भव्य मस्जिदों को मिट्टी में मिला दिया। अभी हलाकू और आगे बढ़ना चाहता था परंतु मंगू ख़ाँ के देहांत की सूचना पाकर वह वापस लौटने पर बाध्य हो गया। वापस पहुँचकर वह सिंहासनारूढ़ हुआ लेकिन शासन की बागडोर उसके हाथों में अधिक न टिक सकी और वह सन् 663 हि. में स्वयं द्वारा स्थापित नई राजधानी 'मराग़ा' में मर गया।

उसकी मौत के उपरांत ईरान में ईलख़ानी वंश के अबाकाख़ान का शासन काल प्रारंभ हुआ। उसके अतिरिक्त इस राजवंश के प्रसिद्ध शासक ग़ाज़ान एवं अलजाई थे। अहमद तकुदार प्रथम ईलख़ानी सुलतान था जिसने इसलाम

धर्म अपनाया तथा अपना नाम अहमद रखा। दो वर्षों के बाद उसके भतीजे अरग़ून ने उसका वध कर स्वयं को सुलतान घोषित कर दिया। अरग़ून की हुकूमत आठ वर्ष तक रही। उसके काल में चाव (काग़ज़ी मुद्रा) का प्रचलन प्रारंभ हुआ। सन् 694 हि. में इस राजवंश का प्रमुख शासक ग़ाज़ान ख़ान सुलतान बना। उसका काल आर्थिक एवं प्रशासनिक सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। अंतिम सुलतान अबुसईद बहादुर ख़ान था जिसके काल में सरबीदारान नामक शिआओं का विद्रोह शुरू हुआ।.मुगलों के आपसी मतभेद एवं लड़ाइयों ने इस प्रकार के विद्रोहों को ईरान के अन्य भागों में फैलने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। इसी के काल में ग़ौरकानी सरदार अमीर तैमूर ने मंगोलिया आदि पर विजय प्राप्त कर ख़ुरासान पर आक्रमण किया। उसने तीन वर्ष तक निरंतर आक्रमण कर ईरान के प्रमुख भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। तीन वर्ष तक ईरान में लूटमार करने के बाद वह समरक़ंद में तुक़्तमतश ख़ान के विद्रोह का दमन करने के लिए वापस गया। कुछ समय बाद उसने पुनः सात वर्षों तक ईरान को अपने लगातार आक्रमणों एवं लूटमार का निशाना बनाया तथा लघु एशिया तक जा पहुँचा जहाँ सुलतान ईलदुरम बायज़ीद तथा अमीर तैमूर के मध्य अंकारा की प्रसिद्ध लड़ाई हुई। इसमें तैमूर ने विजय प्राप्त की तथा उस्मानी सुलतान को बंदी बनाया गया। तैमूर के आदेश पर अनातोली के शिआओं को तुर्किस्तान की ओर खदेड़ दिया गया। यही लोग बाद में क़ज़लबाशियों के नाम से विख्यात हुए। कहा जाता है कि ख़ाजा सफ़वी की सिफ़ारिश पर अमीर तैमूर ने इन्हें रियायतें प्रदान कीं। इसीलिए तदुपरांत स्थापित सफ़वी काल में ये क़ज़लबाश सफ़वी शासकों के प्रमुख विश्वासपात्र एवं सुरक्षाकर्मी बने रहे। सन् 807 हि. में तैमूर के देहांत के उपरांत इस वंश के प्रसिद्ध सुलतानों में शाहरुख़, उलुग बेग और अबु सईद थे। तैमूरियों की सल्तनत दसवीं सदी हि. के अंत तक रही। उनके पतन काल में ईरान में अन्य कई छोटी-छोटी हुकूमतें, जैसे जलायरी, सरबीदारी, आले-किरत, मुज़फ़्फ़री आदि भी अस्तित्व में आईं। इन सबका शनैः-शनैः पतन सफ़वी शासन काल में हुआ।

मुगलों और तैमूरियों के प्रथम आक्रमण तथा बाद के शासन काल में ईरानी संस्कृति एवं उसकी धरोहर को असीम आघात पहुँचा। बहुमूल्य पुस्तकालय अग्नि की भेंट चढ़ गए, असंख्य विद्वानों को मौत के घाट उतार दिया गया। धार्मिक स्थलों को घोड़ों के पाँवों तले रौंदकर अनादृत और अपवित्र किया गया। यद्यपि इन्हीं मुगलों के बाद के काल में ईरानी संस्कृति एवं साहित्य का पुनरुत्थान उस काल के महान् साहित्यकारों, जैसे शेख़ सादी, हाफ़िज़ एवं मौलाना रूम आदि ने किया। इन कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के द्वारा ईरानी समाज का मानवता पर विश्वास पुनः स्थापित किया। ईरानी संस्कृति के इतिहास में उनका यह योगदान प्रशंसनीय है।

सफ़वी वंश–सफ़वी वंश से क़ाजार वंश के पतन तक शाह इसमाइल सफ़वी ने सन् 907 हि. में तबरीज़ में क़ज़लबाशियों की सहायता तथा शेख़ सफ़ीउद्दीन अर्दबीली के मार्गदर्शन में केंद्रीय शक्ति पर आधारित प्रथम शिआ राज्य स्थापित किया। सफ़वी राज्य की स्थापना से शिआ मत को राजकीय मान्यता प्राप्त हुई। धर्म एवं राजनीति दोनों से जुड़ा हुआ सफ़वी शासन पड़ोसी सुन्नी शासकों को बिल्कुल स्वीकार्य न था। विशेषतः पूर्व के उज़बेक तथा पश्चिम में उस्मानी शासकों ने लगातार रुकावटें शुरू करने के उद्देश्य से शाह इसमाइल पर हर ओर से दबाव बढ़ाना शुरू किया। प्रारंभ में तो शाह इसमाइल को विजय प्राप्त हुई लेकिन उस्मानी शाह सलीम ने 'चालदारान' के युद्ध में शाह इसमाइल को परास्त किया। यद्यपि यह पराजय तो सफ़वियों के लिए इतनी हानिकारक

मैदाने-नक़्शे-जहान, काख़े-आली क़ापू (इस्फ़ाहान)

नहीं थी लेकिन आंतरिक विरोध तथा शाह इसमाइल की 38 वर्ष की आयु में आकस्मिक मृत्यु ने सफ़वी शासन को प्रारंभ में ही हिला दिया। शाह इसमाइल के सुपुत्र शाह तहमास्ब (तहमास्प) को आगामी बीस साल तक उज़बेक एवं उस्मानी सुलतानों से सफ़वी शासन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए लड़ते रहना पड़ा। अमासिया के शांति समझौते के उपरांत उसके शासन काल में कुछ समय के लिए शांति का वातावरण रहा। शाह तहमास्ब की मृत्यु के उपरांत उस्मानी शासकों ने आक्रमण का सिलसिला पुनः आरंभ किया। लेकिन नये सफ़वी शासक शाह अब्बास प्रथम ने उनका मुँहतोड़ जवाब दिया। उसके राज्यकाल में सफ़वियों को एक मज़बूत शासन व्यवस्था एवं सुदृढ़ सैन्य शक्ति के निर्माण में सफलता प्राप्त हुई। उसके ही काल में स्थापत्य कला, शिआ मत संबंधी धार्मिक साहित्य तथा चित्रकारी को अभूतपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए कई कार्यों की शुरुआत की, जैसे यूरोपीय देशों से भी संबंध स्थापित करके उनके दूतों के साथ समझौता किया। कुछ मतानुसार यूरोपीय देशों ने इन समझौतों से केवल स्वयं को लाभप्रद स्थिति में रखा तथा ईरान को उससे लेशमात्र भी लाभ न पहुंचा।

शाह अब्बास प्रथम का शासनकाल–इस काल में सफ़वी राज्य का वैभव तथा समृद्धि चरम सीमा पर थी। उसकी मृत्यु सफ़वी वंश के पतन का कारण बनी। आगामी शासक दरबारियों के षड्यंत्रों का शिकार बने। विवेकहीन सफ़वी शासक विशेषतः शाह सफ़वी के काल में कुशल एवं शक्तिशाली सेनापतियों, सामंतों एवं मंत्रियों के क़त्ल हुए। ऐसी परिस्थितियों ने अफ़ग़ान क़बीले के सरदार महमूद अफ़ग़ान को सफ़वियों की राजधानी इस्फ़ाहान पर आक्रमण करने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। 'गुलबादाद' की जंग में सफ़वी सेना को अफ़ग़ानों ने परास्त किया तथा आने वाले कई वर्षों तक अफ़ग़ानों की लूटमार जारी रही। दूसरी ओर उस्मानी शासकों के आक्रमण शुरू हो गए। इनसे बचने के लिए सफ़वी शासक शाह तहमास्ब द्वितीय ने तेहरान के रास्ते माज़िंदरान की ओर पलायन किया। इस्फ़ाहान में महमूद अफ़ग़ान का पुत्र अशरफ़ अफ़ग़ान सिंहासनारूढ़ हुआ। उस्मानी एवं रूसियों ने ईरान के विभिन्न भागों को आपस में बाँट लिया अर्थात् ईरान पुनः विभिन्न शक्तियों के बीच पिसता रहा तथा कोई प्रभावशाली केंद्रीय शक्ति शेष न रही।

इसी दौरान नादिर क़ुली ख़ान उर्फ़ नादिर शाह ने शाह तहमास्ब सफ़वी का साथ देकर पहले मशहद एवं

ख़ुरासान पर अधिकार किया तथा बाद में इस्फ़ाहान पर सफ़वी शासन को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयास किया। दंदानकान (दामग़ान) में महमूद अफ़ग़ान के उत्तराधिकारी अशरफ़ अफ़ग़ान को हरा अफ़ग़ानों को उस क्षेत्र से खदेड़ा तथा सफ़वियों को फिर से इस्फ़ाहान पर अधिकार करने में पूर्ण सहयोग दिया। इसी प्रकार नादिर क़ुली ख़ान ने ईरान के अन्य भागों में रूसियों तथा उस्मानी सेनाओं से लड़ाई की। उस्मानियों से परास्त होता देखकर सफ़वी शासक शाह तहमास्ब ने उनको आज़रबाईजान का क्षेत्र देकर शांति समझौता किया लेकिन नादिरशाह ने शाह तहमास्ब के इस समझौते को स्वीकार नहीं किया और सफ़वी शासक को गद्दी से उतारकर स्वयं सत्ता सँभाल ली।

अफ़शार वंश–कुछ समय बाद सन् 1146 हि. में मुग़ान में उसने स्वयं को नादिरशाह अफ़शार की उपाधि से सुशोभित किया तथा अफ़शार वंश के राज्य की स्थापना की। तीन वर्ष के अल्पकाल में नादिरशाह ने बग़दाद से लेकर देहली तक आक्रमण किये तथा कई क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त किया। नादिरशाह के क्रूर व्यवहार ने उसके पुत्रों एवं संबंधियों को उसका शत्रु बना दिया। जब उसने अपने पुत्र रिज़ा क़ुली मिर्ज़ा, जिसने नादिरशाह का वध करना चाहा था, गिरफ़्तार कर मारने का आदेश दिया तब रिज़ा क़ुली के समर्थकों ने नादिरशाह को ही एक षड्यंत्र रचकर क़त्ल कर दिया।

ज़ंद वंश–सन् 1163 हि. में करीम ख़ान ज़ंद ने नादिरशाह की अफ़शारी हुकूमत के ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा खड़ा कर दिया। उसने 'ज़ंद' वंश के नाम से फ़ारस में अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंश का प्रभाव क्षेत्र अधिकांशतः फ़ारस ही रहा तथा राजधानी शीराज़, जहाँ का वकील बाज़ार आज भी उस काल की याद दिलाता है। ज़ंद वंश का राज्य काल लगभग 30 वर्षों तक रहा।

क़ाजार (क़ाचार) वंश–सन् 1193 हि. में करीम ख़ान ज़ंद की मृत्यु के उपरांत आग़ा (आक़ा) मुहम्मद ख़ान क़ाजार (क़ाचार) ने 'क़ाजार वंश' की स्थापना की तथा अपनी राजधानी शीराज़ से हटाकर अस्तराबाद में बनाई। क़ाजार वंश का यह संस्थापक बहुत क्रूर था। उसने अनेक विद्रोही सरदारों को मौत के घाट उतारकर पुनः ईरान में केंद्रीय शक्ति की स्थापना की। शायद यह केवल क्रूरता एवं अत्याचार द्वारा ही संभव था। लेकिन ईरान में अभी वह पूर्णतः राजनीतिक स्थायित्व नहीं ला पाया था कि विद्रोही सरदार सादिक ख़ान शलाक़ी के नेतृत्व में रचे गए षड्यंत्र में फँस गया तथा मौत के घाट उतार दिया गया। उसका राज्यकाल लगभग तीन वर्ष तक रहा। उसके स्थान पर फ़तह अली शाह नया क़ाजार शासक बना। उसके 38 वर्षीय राज्यकाल में दरबारी षड्यंत्रों का सिलसिला निरंतर जारी रहा। अति दूरदर्शी तथा बुद्धिमान वज़ीर मिर्ज़ा बुज़ुर्ग फ़राहानी के कारण शाही दरबार कुछ सीमा तक आंतरिक एवं बाह्य षड्यंत्रों से सुरक्षित रहा। लेकिन रूसियों और अंग्रेज़ों के आक्रमण ईरानी सीमाओं पर लगातार जारी रहे तथा रूसियों एवं अंग्रेज़ों के समर्थक दरबारी उनका साथ देते रहे। फ़तह अली शाह के पुत्र अब्बास मिर्ज़ा ने उनके जाल में फँसकर गुलिस्तान तथा तुर्कमानचाई के समझौते पर हस्ताक्षर कर ईरान के (वर्तमान सीमावर्ती क्षेत्र) अर्मिनिस्तान, नख़जवान, गुर्जिस्तान तथा दाग़िस्तान के क्षेत्रों को सदा के लिए गँवा दिया।

तीसरे शासक मुहम्मद शाह क़ाजार का 14 वर्षीय काल भी इसी चक्रव्यूह में फँसा रहा। विदेशी शक्तियों

द्वारा रचाए गए जाल का शिकार उस दौर का सबसे प्रमुख एवं विद्वान मंत्री क़ायम-मक़ाम फ़राहानी बना। सन् 1246 हि. में नासिरुद्दीन शाह सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके प्रथम वर्षों की अति दुःखद घटना काशन के फ़ीन बाग़ के हमाम में शाह के संकेत पर की गई अमीर कबीर की निर्मम हत्या है। यह हत्या भी विदेशी शक्तियों द्वारा रचे गए षड्यंत्रों का एक भाग थी। हालांकि नासिरुद्दीन शाह ने अमीर कबीर के सुधारों को मिर्ज़ा आग़ा ख़ान नूरी के द्वारा क्रियान्वित करने का असफल प्रयास किया लेकिन नासिरुद्दीन शाह का काल अंग्रेज़ों तथा रूसियों के षड्यंत्रों में बुरी तरह जकड़ा रहा। देश के अंदर ग़रीबी-भुखमरी का वातावरण था। विदेशी कर्ज़ों के तले देश दबता जा रहा था। राजनीतिक सुधार की ओर उठाया गया हर क़दम रुकावटों के फैलाए हुए जाल में दबकर रह जाता था। नासिरुद्दीन शाह के मंत्री मिर्ज़ा अली असग़र ख़ान अतावक उर्फ़ अमीन उस्सुलतान का वर्चस्व अति हानिकारक साबित हुआ। नासिरुद्दीन शाह ने विदेशी कर्ज़ों के बल पर विदेश यात्राएं कीं तथा ईरान के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के ठेके अंग्रेज़ों तथा रूसियों को दिए। इस प्रकार के कार्यों से आधुनिकीकरण कम हुआ तथा देश को नुक़सान अधिक उठाना पड़ा। सन् 1861 ई. में अंग्रेज़ों के सफल प्रयास से अफ़ग़ानिस्तान स्वतंत्र राज्य के रूप में ईरान से पृथक् हुआ। नासिरुद्दीन शाह की देश विरोधी नीति का विरोध ईरान में हर दिशा से होना शुरू हो गया। जन साधारण में राजनीतिक जागृति का आरंभ इसी काल से हुआ। नासिरुद्दीन शाह जब अपने राज्यकाल की स्वर्ण जयंती की तैयारी की योजना बनाने में व्यस्त था तो उसी के दरबारियों में मिर्ज़ा रज़ाई किरमानी तथा उसके सह-विचारकों ने देश को दुर्दशा से बचाने के लिए शाह को क़त्ल करने की योजना बनाई। परिणामस्वरूप स्वर्ण जयंती से दो वर्ष पूर्व ही नासिरुद्दीन शाह का क़त्ल कर दिया गया। कुछ मतानुसार राजनीतिक जागृति से उत्पन्न आंदोलन, मशरूतियत (संवैधानिक व्यवस्था स्थापना, संवैधानिकतावाद) की उचित माँगों को अस्वीकार करना तथा आर्थिक व्यवस्था को चरमरा देना नासिरुद्दीन शाह के क़त्ल के मुख्य कारण थे।

आगामी क़ाजारी शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन का व्यक्तित्व अति निर्बल एवं निकट दृष्टिक था। मशरूतियत का आंदोलन दिन-प्रतिदिन बलशाली होता गया। लोगों में अपने संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति का अहसास तथा जनसाधारण में फैली राजनीतिक स्फूर्ति के वातावरण ने सन् 1327 हि. (सन् 1907 ई.) में मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह को संविधान स्थापन संबंधी फ़रमान पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया। ईरान में प्रथम संसद की स्थापना हुई लेकिन नए बादशाह मुहम्मद अली शाह ने रूसियों की मंत्रणा तथा अंग्रेज़ों की चश्मपोशी नीति पर भरोसा कर प्रथम संसद को तोप से ही उड़वा दिया। इस घटना के परिणामस्वरूप संविधान समर्थक नेताओं ने पुनः प्रचंड आंदोलन आरंभ कर दिया तथा मुहम्मद शाह को ईरान से रूस भाग जाने पर बाध्य कर दिया। इसी समय रूस की क्रांति ने अंग्रेज़ों को स्वतंत्रता से राजनीतिक कार्यों में अधिक हस्तक्षेप करने का अवसर दे दिया। संविधान संबंधी आंदोलनकारियों के समर्थक अहमद शाह क़ाजार ने शासन की बागडोर सँभाली। लेकिन क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के दबाव में वह ईरान के हित की सुरक्षा न कर पाया। परिणामस्वरूप देश के आंतरिक भागों में फैला हुआ अस्थिरता का वातावरण बिगड़ता गया।

पहलवी वंश–इसी वातावरण में अंग्रेज़ों की सहायता से रिज़ाशाह (कबीर) ने पहले मुहम्मद अली फ़ुरूग़ी के साथ कामचलाऊ सरकार के प्रभारी के रूप में कार्य किया लेकिन कुछ ही समय बाद (सन् 1925 ई. में) स्वयं को सम्राट घोषित कर पहलवी राज्य वंश की स्थापना की जिससे क़ाजारियों का लगभग 130 वर्ष पुराना शासन

समाप्त हो गया। रिज़ाशाह कबीर के काल में मशरूतियत के आंदोलन से प्राप्त सभी राजनीतिक एवं संवैधानिक अधिकार जनसाधारण से छिन गए तथा संपूर्ण ईरान एक बार फिर सैनिक अथवा शासकीय सत्ता की गोद में चला गया। विचारकों, साहित्यकारों तथा लेखकों की निडर अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लग गए। अवज्ञाकारियों को वर्षों जेल की सलाखों के पीछे जीवनयापन करने पर बाध्य होना पड़ा। आधुनिकीकरण के नाम पर यूरोपीय समाज का अंधाधुंध अनुसरण करने पर समाज को मजबूर किया गया। देश की विदेश नीति की बागडोर मुख्य रूप से इंग्लैंड, रूस तथा अमरीका के हाथों में रही। रिज़ाशाह कबीर ने जब जर्मनी की तरफ झुकना चाहा तो तीनों प्रमुख शक्तियों ने द्वितीय महायुद्ध के समय रिज़ाशाह कबीर को पदच्युत कर दिया तथा उसके स्थान पर उसके पुत्र मुहम्मद रिज़ा को सिंहासनारूढ़ किया। उसके प्रारंभिक काल में संवैधानिक रूप से डा. मुहम्मद मुसद्दक के नेतृत्व में राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ तथा जनसाधारण एवं संसद को संवैधानिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। लेकिन जैसे ही डा. मुसद्दक ने तेल कंपनियों का राष्ट्रीयकरण तथा विदेशी भागीदारी को समाप्त करने की दिशा में कड़ा रुख अपनाना शुरू किया तो देश विरोधी स्वार्थी तत्त्वों ने विदेशी शक्तियों के समर्थन से मुसद्दक के राष्ट्रहित के सपने चूर-चूर कर दिए। फलस्वरूप कुछ ही समय उपरांत राष्ट्रीय सरकार को गिराकर संपूर्ण शासन की बागडोर शाह को थमा दी गई। नये सुधारों के नाम पर स्वयं के परिवारजनों एवं समर्थकों को विभिन्न प्रकार से प्रशासन के प्रत्येक विभाग से संलग्न किया। सी.आई.ए. के ढंग पर प्रशिक्षित 'सावाक' अर्थात् खुफ़िया एजेंसी ने प्रत्येक शाह-विरोधी गतिविधि का दमन किया।

वर्तमान इसलामी गणतंत्र ईरान के संस्थापक, इमाम खुमैनी ने शाह के राष्ट्र विरोधी एवं जनहित के विरुद्ध मूल उद्देश्यों का पर्दाफ़ाश किया। उन्होंने प्रांतों के लिए प्रस्तावित चुनाव संबंधी बिल का कड़ा विरोध किया तथा शाह की जनविरोधी पूँजीवादी आर्थिक नीतियों की पोल खोलकर सर्वसाधारण को उनके अधिकारों के हनन से अवगत कराया। राष्ट्रहित नीति के विरुद्ध जब इमाम खुमैनी ने खुलकर आवाज़ उठाई तो उन्हें सन् 1342 हि. में प्रथमतः कारावास तथा बाद में देश-निकाला दे दिया गया। लेकिन उनकी अनुपस्थिति में भी उनके समर्थकों ने उनकी योजनाओं के अनुसार शाह-विरोधी अभियान जारी रखा तथा शाह की दमनकारी

मुजाहिदीने-इंक़लाब

नीतियों का डटकर मुक़ाबला किया। उद्देश्य प्राप्ति के लिए अनेक व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा तथा असंख्य को यातनाएँ सहनी पड़ीं। शाह बाह्य शक्तियों के भरोसे तथा अपने विश्वास-पात्रों के झूठे आश्वासनों के सहारे अपनी राष्ट्र-विरोधी नीतियों को चलाते रहने का प्रयास करता रहा। लेकिन जनसाधारण, विशेषतः दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोगों ने शाह विरोधी आंदोलन को प्रत्येक नगर में पूरे दल-बल के साथ आगे बढ़ाया। अंत में इमाम खुमैनी द्वारा प्रेरित इसलामी आंदोलन को पंद्रह साल बाद पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

वर्तमान इसलामी गणतंत्र सरकार की स्थापना–फ़रवरी 1979 ई. में शाह ईरान छोड़कर भाग गया। ईरान में जनसाधारण द्वारा समर्थित इसलामी गणतंत्र सरकार की स्थापना हुई तथा राष्ट्रहित के कार्यों को योजनाबद्ध रूप से करने की दिशा में अनेक क़दम उठाए गए। इन कार्यों से आज ईरान विभिन्न क्षेत्रों में अत्यधिक उन्नति कर चुका है तथा अनेक क्षेत्रों में आत्मनिर्भर है।

शाह के विरुद्ध प्रदर्शन

ईरान के धर्म एवं मत

धर्म, आस्था, विश्वास एवं मत समाज विशेष की सभ्यता तथा संस्कृति के क्रमिक विकास के द्योतक हैं। ईरानी संस्कृति एवं सभ्यता के वृत्त में धर्म की भूमिका उल्लेखनीय रही है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा कला, शिक्षा एवं नैतिक ज्ञान का मुख्य स्रोत भी धर्म ही रहा है। अतः प्रस्तुत लेख विभिन्न आयामों की धुरी वाले इस विषय पर आधारित है। ईरान में भूत एवं वर्तमान में विद्यमान धार्मिक आस्थाओं को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. आर्य पूर्व कालीन ईरान की धार्मिक स्थिति

आर्यों के आगमन पूर्व कालीन नज्द से प्राप्त स्रोतों के अनुसार ईरान में ईलामी क़ौम आवासित थी। इनका केंद्रीय शक्ति स्थल ख़ुज़िस्तान का दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र था तथा इनका मुख्य प्रभाव क्षेत्र फ़ारस, बूशहर तथा ज़ागरूस पर्वत शृंखला के मैदानी भाग एवं मध्य ईरान तक फैला हुआ था। इनके पड़ोसी राज्य सुमेर, बेबीलोनिया, अकदी तथा आशूरी थे। इन राज्यों के साथ ईलामियों के सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो चुके थे। तेईस सदी ई. पूर्व संबंधी एक प्रमाण से इस तथ्य का पता चलता है कि ईलामियों के धर्मानुसार ख़ुदाओं की अर्चना एवं वंदना बिना नाम लिए की जाती थी तथा ईलामी निर्गुण भक्ति के उपासक थे। यह प्रमाण अकदी बादशाह 'निराम सेन' तथा ईलामी बादशाह 'हीता' के मध्य हुए एक अनुबंध से संबंधित है। इसमें विभिन्न देवताओं की उपाधियों का विवरण भी सम्मिलित है। इस अनुबंध का प्रारंभ ईलामियों की प्रधान देवी 'पीनीकीर' के उल्लेख से होता है।

आगामी युगों में ईलामियों की प्रधान देवी 'हमू' जिसे आकाशों की सम्राज्ञी कहा जाता था, सभी देवताओं में प्रमुख मानी जाती थी। बू शहर से लेकर शूश तक एक अन्य देवी 'कीरीश' की उपासना की जाती थी। एक अन्य देवता 'होमबन' का भी उल्लेख है। संभवतः इस शब्द की उत्पत्ति हूपा (Hupa) अर्थात् 'आज्ञा देने वाले' से हुई है। इस देवता को ईलामी काल में रक्षक, सशक्त देवता (ख़ुदाए-तवाना), प्रमुख देवता (ख़ुदाए-बुज़ुर्ग) तथा महादेवता (ख़ुदाए-ख़ुदायान) की उपाधि से भी स्मरण किया जाता है। एक अन्य ईलामी देवता 'इंशुशीनक' का उपासना स्थल शूश में था तथा इसका प्रभाव क्षेत्र द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. में बहुत बढ़ चुका था। यह बात उल्लेखनीय है कि ईलामियों के राज्यकाल में प्रत्येक केंद्र अथवा नगर का अपना मुख्य देवता था। ईलामी लोग सभी प्रकार

की प्राकृतिक एवं सांसारिक नैमतों को देवताओं की अनुकंपा समझते थे। इसी कारण उन्हें प्रसन्न करने के लिए भेंट अर्पित करते थे। ईलामी काल के उपासना गृह के अवशेष चग़ाज़ंबील में आज भी विद्यमान हैं। उस काल में व्याप्त विभिन्न रीति-रिवाजों की कल्पना उपरोक्त उपासना गृह से की जा सकती है।

2. ईरान में आर्यों का आगमन, अनंतर काल तथा इसलाम पूर्व कालीन धार्मिक स्थिति

ज़रतुश्त धर्म के उदय के वर्णन के लिए ईरान में आर्यों के आगमन पूर्व पश्चिमी एशिया स्थित विभिन्न क़ौमों के धार्मिक आस्था संबंधी कुछ तत्त्वों का परिचय आवश्यक है। ज़रतुश्त धर्म के विश्लेषण के लिए आर्यों की धार्मिक जानकारी के लिए चार प्रमुख स्रोत उपलब्ध हैं : 1. वेद, जिसमें ऋग्वेद प्राचीनतम है तथा इसका लेखनकाल 1500 से 1200 वर्ष ई. पू. माना गया है। 2. विभिन्न स्थलों पर आवासित आर्य क़ौमों के शेष प्रमाण जिनमें 'बग़ाज़कवि' का चौदहवीं शताब्दी ई. पू. का अनुबंध उल्लेखनीय है। यह अनुबंध बादशाह 'हैतित' तथा 'मीतानी' के मध्य हुआ था। इसमें 'वरुण', 'मित्र', 'इंद्र' तथा 'नासत्य' देवताओं का उल्लेख बारंबार हुआ है। 3. अवेस्ता के संशोधित पाठ (जिनमें से ज़रतुश्त धर्म के प्राचीन अस्वीकृत तत्त्वों को निकाल दिया गया था।)। 4. आर्यों की पौराणिक अथवा देव-कथा तथा भाषा-विज्ञान संबंधी प्रमाण—इन प्रमाणों से भाषाविज्ञान के तथ्यों के आधार पर धार्मिक आस्थाओं संबंधी नाम में व्याप्त समानताओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

भारत-यूरोपीय देवताओं में सबसे प्राचीन 'दियाऊस' (Dyaus) है। शब्द उत्पत्ति के दृष्टिकोण से यह शब्द संस्कृत भाषा के देव, अवेस्ता का दैव, लेटिन का थैऊस (Theos), पहलवी का दैव, फ़ारसी का दीव एवं फ्रांसीसी का दिअ (Dieu) है। प्रकाश एवं दीप्ति का द्योतक यह भारतीय-यूरोपीय देवता कालचक्र के परिणामस्वरूप आदेशक के पद से अवनत होकर केवल दिन के उजाले के रूप में एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में रह गया है। दियाऊस के उपरांत दूसरा देवता 'वरुण' उसका उत्तराधिकारी हुआ। वरुण के साथ एक अन्य देवता 'मित्र' भी है। जिसके नाम का उल्लेख बग़ाज़कवि के अनुबंध में भी हुआ है। वरुण शब्द की उत्पत्ति 'व्रि' अर्थात् संयोजन अथवा जुड़ने से है। अन्य शब्दों में यह देवता विभिन्न पक्षों में समझौता करवाने का कार्य संपन्न करता रहा है। इसी कारण यह नियम एवं क़ानून अथवा विधि-विधान के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः वरुण का स्थान प्रथम दो भगवत् (इज़द) रूपों में से है तथा ऋग्वेद में इसे विश्वद्रष्टा की उपाधि से स्मरण किया गया है। इस सहस्रानन की दृष्टि से कुछ भी ओझल नहीं हो सकता है। वह पूर्ण सर्वज्ञ एवं सक्षम है। वरुण स्वच्छंद शासक, संसार का प्रबंधक तथा आसूरा अर्थात् जगत का स्वामी है। इसी शब्द अर्थात् आसूरा को दृष्टि में रखते हुए कुछ विद्वानों ने उसे आहूरमज़दा के समरूप बताया है। दोनों के समान गुण एवं विशिष्टताओं ने इस धारणा को बल दिया है कि वरुण का उत्तराधिकारी आहूरमज़दा था क्योंकि आहूरमज़दा के संबंध में भी यह धारणा है कि वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, निष्कपट तथा निश्छल है। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं तथा बग़ाज़कवि के अनुबंध में वरुण के साथ 'मित्र' का उल्लेख है। मित्र शब्द की उत्पत्ति मीय (Mei) से मानी गई है अर्थात् समझौता, अनुबंध एवं संधि करना। इस अनुबंध का संकेत मानवजाति के साथ होने वाले समझौते की ओर है। मित्र अनुबंध न्यासी है तथा वह शक्ति है जिसके कारण समझौता संपन्न होता है। समझौते के उल्लंघनकारी का विनाश भी मित्र के द्वारा ही होता है तथा इस कार्य को 'मेहरदवाज' कहा जाता है। मित्र के अन्य कार्य क्षेत्रों में संसार प्रबंधन एवं सत्ता का विधि-विधान

समान रूप से संचालित करना है। संस्कृत में 'ऋता' तथा अवेस्ता में 'असा' विधि-विधान के अर्थों में है। जिसके अनुसार लोक-परलोक के सभी कार्यों का संचालन इनके द्वारा होता है। इसकी आज्ञाओं के सत्यपालक को 'असावन' (मोमिन) कहते थे। इसी प्रकार वेद के पाठों में मित्र-वरुण और अवेस्ता के पाठों में मेहर-अहुर का एक साथ उल्लेख आता है। यह भी एक स्रोत माना जाता है जिसके अनुसार अवेस्ताई एवं वेद के पाठों में उल्लेखित अहुर एवं वरुण भगवत् रूपों के समान कार्यों को देखा जा सकता है।

ज़रतुश्त के उदय उपरांत मित्र के महत्त्व एवं मान्यता का ह्रास हुआ। गाथाओं (गाहान) में ज़रतुश्त पर अवतरित देववाणी में मित्र शब्द का उल्लेख मात्र एक बार आया है। वहाँ भी मित्र केवल शाब्दिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है न कि भगवत् रूप में। लेकिन ज़रतुश्त की अवनति के उपरांत जनसाधारण के मानसपटल पर अंकित मित्र का पुनः उल्लेख होने लगा। उसे पुनः खोया हुआ सम्मान प्राप्त हुआ। दशम् 'यश्त' में इसको मेहर के नाम से स्मरण किया गया है जिसके अनुसार वह ज़रतुश्त के एकल भगवान् आहूरमज़दा का सर्जनहार है तथा अर्चना एवं स्तुति में वह आहूरमज़दा का ही समकक्ष है। अवेस्ता के इस भाग में मेहर की प्रशंसा पठनीय है।

भारत-यूरोपीय देवताओं में 'इंद्र' का नाम भी उल्लेखनीय है। बग़ाज़कवि के अनुबंध में भी इसके नाम का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख विशेषतः ध्यान देने योग्य है। वेद के चौथाई भाग में इसी देवता का वर्णन निरंतर मिलता है। वह अस्त्र के रूप में प्रयुक्त तड़ित (विद्युत) का स्वामी है तथा सोमरस (अवेस्ता में होम) के सेवन उपरांत शत्रु से युद्ध करने के लिए जाता है। वस्तुतः इंद्र शौर्य एवं वीरता का प्रमुख द्योतक है। उसकी अनेक उत्कृष्ट उपलब्धियों में सूखा तथा कहत के असुर 'वृत' के विनाश की प्रमुख रूप से गणना की जाती है। वृत ने समस्त पृथ्वी का जल पीकर शुष्क कर दिया था तथा पृथ्वीवासियों का विनाश लगभग तय था कि उसी समय इंद्र देवता ने वृत का वध कर समस्त धारित जल को पृथ्वी पर पुनः प्रवाहित किया। इस सुकृत्य से पृथ्वी लोकवासियों को पुनः जीवनदान मिला। इंद्र की इस विजय को 'वृतहन्' का नाम दिया जाता है। उल्लेखनीय है कि पहलवी तथा आधुनिक फ़ारसी में इंद्र 'बहराम' के नाम से वर्णित हुआ। ज़रतुश्ती धर्म संबंधी उल्लेखों में इसका वर्णन भर्त्सना के साथ किया गया है तथा असुर (दैव) वर्ग में इसकी गणना की गई है। जबकि बहराम को सूखे और कहत के राक्षस को मारने का श्रेय देकर महत्ता प्रदान की गई है। अवेस्ता में बहराम अति महत्त्वपूर्ण देवता और शौर्य एवं वीरता का स्रोत माना गया है।

बग़ाज़कवि के अनुबंध में वर्णित अन्य भारत-यूरोपीय देवताओं में 'नासत्यहा' देवताओं की एक श्रेणी का नाम है जिनका वर्णन ऋग्वेद में अश्विन के साथ आया है। इन सभी की स्तुति एवं उपासना प्रमुख रूप से की जाती थी। इसी प्रकार कुछ अन्य देवताओं में अग्नि आदि भी हैं जो भारत-यूरोपीय धर्म क्षेत्र में आज भी देवताओं के रूप में पूजनीय हैं। यद्यपि उनमें से कुछ ज़रतुश्त धर्म में दैव अर्थात् असुर की श्रेणी में वर्णित हुए हैं।

फ्रांसीसी लेखक डोमज़िल ने ईरानी तथा भारत-यूरोपीय देवताओं की तीन श्रेणियों का वर्णन किया है। जिनमें प्रथम 'जबरूत' अर्थात् सत्ता के स्रोत हैं तथा इनमें वरुण और मित्र श्रेणी के भगवत् रूप सम्मिलित हैं। द्वितीय 'मलकूत' हैं जिनमें इंद्र एवं उनके समकक्ष अन्य देवता सम्मिलित हैं। तृतीय पृथ्वीलोक संबंधी 'नासत्य', अग्नि, सोम आदि हैं। समस्त पृथ्वी पर प्राणी वर्ग के लिए आवश्यक भूमि को उर्वर बनाए रखना इनके मुख्य कर्म हैं।

ज़रतुश्त धर्म के उदय के साथ आर्यों की प्राचीन धार्मिक आस्थाएँ जिनका आधार अनेक देवताओं की विभिन्न श्रेणियों की उपासना था, ह्रासोन्मुख हो गईं। ज़रतुश्त ने विभिन्न भगवत् रूपों एवं देवताओं के स्थान पर एकल भगवत् रूप की स्तुति एवं उपासना का आह्वान किया। इस प्रकार प्रथमतः एकेश्वर की उपासना का प्रारंभ ईरानी धर्म जगत में हुआ। ज़रतुश्त पर अवतरित अवेस्ता की प्राचीनतम प्रति संबंधी गाथाएँ (गाहान) द्वैतवाद से संबंधित हैं। इसमें किसी भी प्रकार के द्वैत अथवा बहुदेववाद से परिहार किया गया है। सोमरस आदि पेय जिनका सेवन आर्यों में प्रचलित एवं वैध माना जाता था, ज़रतुश्त ने इन सभी को निषिद्ध कर दिया। इस कारण अनेक आर्य वर्ग ज़रतुश्त से क्षुब्ध होकर उसके शत्रु बन गए। इस शत्रुता का वर्णन अवेस्ता तथा गाथाओं में पठनीय है। ज़रतुश्त ने विभिन्न कवि एवं कृपन (अर्थात् यस्ना धर्म के मुख्य धर्माधिकारियों) की तीव्र भर्त्सना की है तथा इन्हें आहूरमज़दा एकेश्वर के आह्वान पर शापित एवं पापी घोषित किया है ताकि उन्हें अमरत्व प्राप्त होने से रोका जा सके और कुकृत्यों के कारण नरक में स्थान दिया जाए।

गाथाओं (गाहान) के अनुसार एकेश्वर आहूरमज़दा समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत का स्रोत एवं स्वामी है। कुछ मतानुसार भारत-यूरोपीय असुर तथा ईरानी आहूर असंबद्ध नहीं हैं। केवल ज़रतुश्त धर्मानुसार आहूरमज़दा एकेश्वर है तथा इसे अनेक आर्य अहरीमनों (असुरों) तथा देवों (राक्षसों) का नाशक माना जाता है। एकेश्वर आहूरमज़दा सत्य और नेकी तथा शुभ कर्मों का प्रतीक है।

कालांतर में वह सभी अमांगलिक तत्त्व जिनको आहूरमज़दा ने समाप्त किया तथा ज़रतुश्त ने निषेध घोषित किया, पुनः ज़रतुश्त धर्म में प्रगट हो गए। जैसे सोम (होम) रस तथा अनेक जड़ी-बूटियों के मादक आसवों का सेवन पुनः प्रचलित हो गया। यहाँ तक कि अवेस्ता का एक अध्याय 'होम' (सोम) यश्त के नाम से विद्यमान है। इसी प्रकार अद्वैतवाद भी द्वैतवाद में परिवर्तित हो गया। ज़रतुश्त धर्म के प्रथम चरण में आहूरमज़दा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान अर्थात् एकेश्वरीय सत्ता के रूप में पूजित था। लेकिन कालांतर में स्रष्टा के रूप में 'स्पंदमीनू' तथा 'अंगरहमयनू' अर्थात् 'अहरीमन' विनाश तथा असत्य के शत्रु के रूप में प्रगट हुए। आहूरमज़दा के साथ-साथ इनकी उपासना भी समान रूप से होने लगी। अन्य शब्दों में, अवेस्ता के बाद के मूल पाठों के अनुसार आहूरमज़दा का शीर्ष स्थान वह नहीं रहा जो प्रथम चरण में था। इस प्रकार ज़रतुश्त धर्म में द्वैतवादी एवं बहुदेववादी तत्त्वों को प्रधानता मिल गई।

गाहान में आहूरमज़दा के विभिन्न दिव्य रूपों में प्रगट कुछ 'फ़रिश्तों' की श्रेणियों के नाम मिलते हैं जिनमें इमशास्पंदान (नामीरायान) प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इस श्रेणी के मुख्य फ़रिश्ते वहूमना : वहमन, अशावहिश्ता; उर्दीबहिश्त : ख़शतुरेवीरिये; शहरीवर : सिपुंताअरमयती; स्पंदअरमुज़ : होरूतात; खुरदाद, अमुरतात तथा (अमरदाद जिसका संबंध इमशास्पंदान मयनू से माना जाता है) हैं। इमशास्पंदानों में सबसे प्रमुख वहमन है। वुंदहिश के अनुसार वहमन एकेश्वर आहूरमज़दा के निकटतम है। अवेस्ता में वहमन शब्द आहूमना (पहलवी में वहूमना) संयुक्त शब्द बताया गया है। वहू अर्थात् नेक, मना अर्थात् विचार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। वहमन, गाहान अनुसार आहूरमज़दा का सुपुत्र है। इसी कारण आहूरमज़दा के उपरांत उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वह प्रलय के दिन प्रधान न्यायकारी के पद पर आसीन होगा।

अन्य इमशास्पंदानों में उर्दीवहिश्त का नाम उल्लेखनीय है। उसका स्थान वहमन तथा स्पंदमीनू के उपरांत आता है। उर्दीवहिश्त शब्द अवेस्ता में असाआहिस्ता और पहलवी में उर्दवहिस्ता है। यह संयुक्त शब्द 'असा' अथवा 'अर्ता'—सत्यता, पवित्रता एवं वहिस्ता—अत्युत्तम के शब्दार्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः इस संयुक्त अक्षर का अर्थ अत्युत्तम सत्यता एवं पवित्रता है। गाहान में भी उर्दीवहिश्त शब्द आहूरमज़्दा के बुद्धिप्रकाश के रूप में उल्लेखित है। गाहान के ही अनुसार उर्दीवहिश्त अग्नि रक्षक तथा वनस्पति सर्जक के रूप में आहूरमज़्दा का सहायक रहा है। इसके अतिरिक्त इमशास्पंदानों में शहरीवर (अर्थात् विशिष्ट बादशाह तथा स्वर्ण का प्रकाश), स्पंदारमुज़् (अर्थात् उच्चविचारक, मर्मज्ञ, बलिदानी), खुरदाद एवं अमरदाद (जल-देवता तथा वनस्पति) देवता हैं। पावन इमशास्पंदानों के समूह का एक अन्य वर्ग जो मीनवी कहलाते हैं, सात अहरीमन तथा दैवान पर संगठित है। इनमें अकूमन (अवेस्तानुसार अकामनू, वहमन का विलोम), इंद्र (वेदों में उल्लेखित इंद्र तथा अवेस्तानुसार उर्दीवहिश्त का समकक्ष), साऊल (वेद का सूर्य अथवा अवेस्ता का शहरीवर), नगहिस, तरीज़, ज़रीज़ आदि हैं। इमशास्पंदानों के शत्रु तथा आहूर के गुणों के धारक इन सभी दैवानों का ज़िक्र अवेस्ता में मिलता है। गाहान की शिक्षाओं के अनुसार आहूरमज़्दा समस्त जग का स्वामी तथा अन्य सभी दोषों का शत्रु है।

अवेस्ता में उल्लेखित अन्य विशिष्ट विषयों में सृष्टि का उद्गम एवं इसकी रचना सम्मिलित है। इसी प्रकार अवेस्ता में लोक-परलोक तथा प्रलय के बारे में विस्तारपूर्वक विवरण दिया गया है। ज़रतुश्ती धार्मिक धारणानुसार लोक-जगत की आयु बारह हज़ार वर्ष है। यह युग चार कालों में विभक्त है तथा प्रत्येक काल में तीन हज़ार साल हैं। इसके उपरांत प्रलय निश्चित है। आदि काल से पूर्व का कोई छोर दृष्टिगत नहीं था। लोक-परलोक में प्रकाश और अंधकार दोनों विद्यमान थे। आहूरमज़्दा प्रकाश का द्योतक तथा अहरीमन अंधकार का द्योतक था। आहूरमज़्दा सर्वज्ञ होने के कारण अहरीमन की अमांगलिक इच्छाओं से भी अवगत था। इसी कारण उसने अनादि से अनंत काल की संरचना की ताकि इस काल में अहरीमन तथा दैवान पर अधिपत्य स्थापित कर उनकी अमांगलिक चेष्टाओं का विनाश कर दे। अहरीमन अपनी दुर्बुद्धि के कारण आहूरमज़्दा के विवेक को न जान पाया तथा सदैव ऐसे कार्यों में संलग्न रहा जिन्हें अनिष्टकारी कार्यों का नाम दिया जा सकता है। आहूरमज़्दा के मांगलिक कार्यकर्ताओं के लिए स्वर्ग तथा अहरीमन के अनिष्टकर्ताओं के लिए नरक का स्थान निश्चित किया गया। अहरीमन का सामना करने के लिए आहूरमज़्दा ने प्रथमतः जिन भगवत् रूपों का सृजन किया उनमें इमशास्पंदान, ईज़्दान तथा भौतिक जगत के प्रवर्त्तक आकाश, जल, धारा, वनस्पति, प्राणी एवं मानव सम्मिलित हैं। यह सभी अहरीमन के समस्त अनिष्टकारी प्रयत्नों को विफल करने के लिए माध्यम के रूप में सृजित हुए। संक्षेप में, यह लोक सत्य एवं असत्य तथा प्रकाश एवं अंधकार का रणक्षेत्र है। अहरीमन सदैव अपनी मायावी एवं छलयुक्त नीतियों से सत्यमार्गियों को पथभ्रष्ट करने में असफल रूप से प्रयत्नशील रहता है। सत्य का प्रकाश सदैव उज्ज्वल एवं दीप्तिमान होने के कारण कदापि असत्य के अंधकार का वर्चस्व स्थापित नहीं होने देता है। अहरीमन ने प्रत्येक प्रकार के नाशक तत्त्वों (प्राणियों) के माध्यम से सत्ता को नष्ट करना चाहा, लेकिन असफल रहा।

आहूरमज़्दा की जगत संरचना की प्रक्रिया में प्रथम मानव 'क्यूमर्स' हुआ जिसकी नस्ल से पीशदादी तथा कियानी वंश अस्तित्व में आए। इन वंशों के सभी शासकों की निरंतर अहरीमन से जंग रही। ज़रतुश्त के सुपुत्र प्रत्येक सहस्राब्दी उपरांत अवतरित हुए और उन्होंने सत्य का वर्चस्व क़ायम रखा। प्रथम अवतार 'ऊशीदर', द्वितीय

'ऊशीदरमा' तथा तृतीय अंतिम अवतार 'सूशियानश' माना गया है। ज़रतुश्ती धर्मानुसार सूशियानश के काल में ज़रतुश्त धर्म अपने चरमोत्कर्ष पर था। इसी काल में अहरीमन का पूर्ण उन्मूलन एवं विनाश हुआ। यह धारणा है कि प्रलय (रस्ताख़ीज़) के दिन कर्मानुसार मानव को स्वर्ग (बहिश्त) अथवा नरक (दोज़ख़) प्राप्त होगा। मृत्यु काल से तीन दिन पर्यंत आत्मा (रवान) शव के आसपास रहेगी तथा चौथे दिन प्रातः उसके कार्यकलापों के विवरण सहित सुरूश और रश्न के समक्ष जाएगी। यदि प्राणी के कर्म अच्छे होंगे तो उसका स्वागत एक सुंदर कुँवारी अथवा अशुभ कर्म होने पर एक कुरूप वृद्धा स्वागत करेगी। इसके उपरांत आत्मा 'चीनूद' सेतु की ओर उन्मुख होगी। यह सेतु बहुत लंबा होगा जिसका मार्ग तलवार के फल की भाँति तीव्र एवं काट देने वाला अशुभकर्ता को दिखाई देगा। अशुभकर्ता अपने कर्मानुसार इसे पार करने से पहले ही दोज़ख़ के गर्त में गिर जाएगा। जन्नत, दोज़ख़ तथा आलमे-बरज़ख़ और कर्मों की विश्लेषण पद्धति का पूर्ण विवरण 'अरदाविरअफ़नामे' नामक पुस्तक में उपलब्ध है।

अपने क्रमिक इतिहास अनुसार ज़रतुश्त धर्म पूर्वी ईरान में प्रचलित होने के उपरांत पश्चिमी क्षेत्र की ओर अग्रसर हुआ। हिख़ामंशी काल में उसका प्रभाव क्षेत्र विशिष्ट रूप से व्यापक हो गया। उपलब्ध स्रोत एवं प्रमाणानुसार उपरोक्त काल में मज़्देयस्ना की शिक्षाओं का बृहत् प्रभाव विद्यमान था। कुछ अन्य देवताओं (ख़ुदाओं) में मेहर तथा नाहिद भी प्रचलन में थे। हिख़ामंशी बादशाहों की आहूरमज़दा में पूर्ण आस्था थी। हिख़ामंशियों के पतन उपरांत ईरानियों की मातृभूमि आक्रमणकारी सिकंदर के हाथों रक्त रंजित हुई। ईरान के साम्राज्य पर यूनानी संस्कृति का प्रभाव विशेषतः पूर्वी राज्यों में स्थापित होना स्वाभाविक था। यूनानियों की आशा के विपरीत उन्हें चिरकालीन स्थायित्व प्राप्त न हो सका। उनके उपरांत उदय हुआ अशकानी राज्य विभिन्न कुलों का संग्रह था जिन्होंने ज़रतुश्त धर्म को राजकीय धर्म तो घोषित न किया लेकिन इसकी प्रगति में भी बाधक न बने।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि इसी काल में 'मानी धर्म' को विशेष उन्नति प्राप्त हुई। मानी का जन्म सन् 216 ई. में हुआ था। इसके माता-पिता ईरानी थे। इसके पिता 'मुग तिसला' संप्रदाय के अनुयायी थे जो गनूसी (नॉस्टिक) संविधान के अंतर्गत आता है। मानी ने अपनी शिक्षा की बहुत सी बातें, जैसे मांस न खाना, शराब न पीना, वैवाहिक जीवन से परहेज़ आदि उसी संप्रदाय से लीं। मानी ने पहली बार 12 वर्ष की आयु और दूसरी बार 24 वर्ष की आयु में प्रकाश देवता की ओर से भेजे गए समकक्ष भगवत् रूप नरजमीक के संग ख़ुदा के दर्शन किए और धर्म संबंधी शिक्षा पर आधारित उसके नियमों को उसने स्वीकार किया। उसने सबसे पहले अपने पिता और परिवार के बुज़ुर्गों को अपने धर्म का अनुयायी बनाया और फिर विभिन्न स्थानों की निरंतर यात्रा कर लोगों को अपने धर्म का न्योता दिया। सासानी बादशाह शापुर के एक भाई के माध्यम से मानी सासानी दरबार में प्रवेश पा सका और अपने धर्म को पूरे देश में फैलाने की अनुमति प्राप्त की। परंतु सासानी दरबार में मानी को प्रतिष्ठा न मिल सकी। शापुर के उत्तराधिकारियों के समय में उस पर कड़ाई की गई। यहाँ तक कि बहराम के ज़माने में ज़रतुश्ती धर्मावलंबियों के प्रभुत्व के कारण मानी को कारावास हुआ और कुछ दिनों बाद उसे क़त्ल कर दिया गया। वास्तव में मानी धर्म ज़रतुश्त, ईसाई तथा बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का मिश्रण था।

संक्षेप में, मानी धर्म सत्य रूपी प्रकाश से अस्तित्व में आया। प्रकाश एवं अंधकार अर्थात् सत्य एवं असत्य इस जगत में विभिन्न सजीव एवं निर्जीव वस्तुओं के सृजन का कारण हैं। मानी धर्म में मोक्ष का दर्शन भी है। इसी प्रकार अहरीमन अथवा असुरों द्वारा प्रकाश अथवा स्वर्ग पर अस्थाई अधिपत्य का भी वर्णन है। इस अस्थाई

अतिक्रमण को पीछे ढकेलना ही असत्य से सत्य के मार्ग की ओर गमन को इंगित करता है। सजीव और निर्जीव में प्रकाश का निहित होना पथभ्रष्टता से सत्य की ओर मार्गदर्शन करना, मानी धर्म की मुख्य विशेषताओं में है। मानी धर्म के अनुसरणकर्ताओं को दो भागों में विभाजित किया जाता है : उत्कृष्ट वर्ग (गुज़ीदगान) तथा श्रोता (नयूशागान)। उत्कृष्ट वर्ग सभी धार्मिक कृत्यों को संपन्न करने में व्यस्त रहते थे। वैवाहिक संबंध स्थापित करना उनके लिए निषेध था क्योंकि इससे वे सांसारिक बंधन में बँध जाते थे। मांसभक्षण की मनाही थी क्योंकि प्राणी वर्ग में भी दिव्य प्रकाश का अंश था। परंतु मानी समुदाय में बहुसंख्यक नयूशागान का कर्तव्य गुज़ीदगान के जीवन निर्वाह के साधन उपलब्ध कराना था तथा वे कृषि एवं अन्य कार्यों में व्यस्त रहते थे। उन्हें केवल एक बार विवाह करने की अनुमति थी। नयूशगान मृत्यु उपरांत–पुनर्जन्म के द्वारा–गुज़ीदगान वर्ग में उत्पन्न होते थे ताकि उन्हें भी स्वर्ग में स्थान मिल सके।

सासानी काल में उदय हुआ यह मानी धर्म विशाल क्षेत्र में फैला। ईरान की सीमाओं से बाहर यूरोप तक इसका प्रभाव क्षेत्र रहा। मानी की प्रसिद्धि धर्म प्रवर्तक होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट चित्रकार के रूप में भी थी। सासानी बादशाहों का धर्म ज़रतुश्ती था इसलिए मानी धर्म के अनुयायियों को सख़्ती से कुचल दिया गया। इसी कारण उनका प्रभाव क्षेत्र ईरान से अधिक मध्य एशिया एवं पूर्वी यूरोप रहा।

सासानी राज्य काल में राजनीति से प्रेरित एक अन्य मत 'मज़दक' का उदय हुआ। इसके अंतर्गत अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सुधारों की माँग की गई। विभिन्न वर्गों पर आधारित सासानी कालीन समाज का सही चित्रण इस मत में की गई माँगों द्वारा प्रकाश में आता है। सासानी शासक कुबाद (सन् 488-531 ई.) के राज्यकाल में इस धर्म को अभूतपूर्व प्रोत्साहन एवं समर्थन प्राप्त हुआ। सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं के विरुद्ध इस धर्म को भी शासकीय संरक्षण प्राप्त ज़रतुश्ती धर्माचार्यों के हाथों प्रताड़ित होना पड़ा। मानी धर्म की भाँति इस धर्म को भी बुरी तरह कुचल दिया गया। मज़दक धर्म की शिक्षाएँ वस्तुतः ज़रतुश्ती शिक्षाओं पर मूलतः आधारित थीं परंतु उनमें मानी तथा नॉस्टिक (प्राचीन ज्ञानवादी ईसाइयों का सिद्धांत) मत की शिक्षाओं का प्रभाव ग़ालिब था। मज़दकियों के अनुसार सृष्टि के प्रारंभिक काल में प्रकाश एवं अंधकार को एक-दूसरे के सम्मुख रखा गया। प्रकाश, ज्ञान एवं आध्यात्मिक बोध का द्योतक है तथा अंधकार, अज्ञानता एवं कुकृत्यों का प्रतीक है और अत्याचार, प्रताड़ना और सभी अमानवीय कार्यों का स्रोत है। मज़दकियों की यह धारणा थी कि अंतिम चरण में अंधकार प्रकाश में विलय हो जाएगा और वही दिव्य प्रकाश की सफलता और विजय का दिन होगा। अन्य शब्दों में निर्वाण का यही मार्ग है।

मज़दकियों को प्राप्त प्रसिद्धि का एक कारण उनकी न्यायप्रियता थी। उनका नारा था–सभी को समान अधिकार प्राप्त हो तथा धन-संपत्ति का विभाजन न्यायपूर्वक हो।

3. ईरान में इसलाम धर्म का आगमन

ईरान के धार्मिक इतिहास के विकास क्रम का तीसरा चरण इसलाम धर्म के आगमन से आरंभ होता है। प्राचीन ईरान में व्याप्त रहा एकेश्वरवाद सासानीकाल में द्वैतवाद में परिवर्तित हो गया। परिणामस्वरूप बहुदेववाद विरोधी

धार्मिक भावना तथा मुक्ति और प्रलय में दृढ़ आस्था के कारण ईरानियों ने इसलाम धर्म के एकेश्वरवाद तथा समानता के आह्वान को शीघ्र ही स्वीकार किया। सासानी काल में व्याप्त वर्ग एवं वर्ण भिन्नता, सामाजिक एवं आर्थिक भेदभाव संबंधी नीति तथा ज़रतुश्ती धर्माचार्यों की अत्याचारी नीतियों ने ईरान में इसलाम धर्म को विशेष प्रोत्साहन दिया। आम धारणा के विपरीत वास्तव में इसलाम धर्म का ईरान में आगमन पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद के जीवन काल में ही हो गया था जिसका स्पष्ट प्रमाण पैग़ंबर के सहाबियों में ईरानी सहाबी (मददगार) सलमान फ़ारसी की मौजूदगी है। इसी प्रकार ईरानी व्यापारी जिनका निरंतर अरब देशों में आना-जाना जारी था, उनका इसलाम धर्म तुरंत क़बूल कर लेना मुख्य प्रारंभिक प्रमाणों में से है।

इसलाम धर्म के प्रारंभिक काल में पैग़ंबर के ही समय में अब्दुल्ला बिन हुज़ाफ़ा सहमी को सासानी बादशाह ख़ुसरो परवेज़ के दरबार में भेजा गया। लेकिन सासानी बादशाह ने न केवल उस आह्वान पत्र को फाड़ डाला बल्कि उपरोक्त दूत को भी यमन के गवर्नर बाज़ान के कारावास में भेज दिया। लेकिन बाज़ान जब अपने दल-बल सहित मदीने पहुँचा तो वहाँ परिवर्तित मानवीय वातावरण से बहुत प्रभावित हुआ और उसने स्वयं इसलाम क़बूल कर लिया। दूसरी ओर सासानी राजा ख़ुसरो परवेज़ अपने ही पुत्र शीरवीय के हाथों क़त्ल हुआ। आगामी वर्षों में शहर बिन बाज़ान अपने पिता बाज़ान के स्थान पर पैग़ंबर द्वारा नियुक्त हुआ।

पैग़ंबर की वफ़ात (स्वर्गवास) के उपरांत कुछ समय तक अस्तव्यस्तता का माहौल ईरान में बना रहा लेकिन शीघ्र ही इसलामी सेना ने सभी प्रकार के विरोधी तत्त्वों को कुचलकर पुनः व्यवस्था को स्थापित किया। यमनी क़बीलों, विशेषतः आक़ील तथा असक की सहायता से विरोधी सेनापति फ़ीरोज़ कैस को पराजित किया गया जिसको क़ैद कर हज़रत अबूबकर के पास मदीने भेज दिया गया। यह सही है कि सासानी साम्राज्य का पतन इसलामोदय के 21-22 वर्ष बाद हुआ लेकिन इस अंतराल में ईरान में इसलाम धर्म विशाल रूप से फैल चुका था।

सभी प्रमुख इतिहासकारों की यह मान्यता है कि ईरान में इसलाम धर्म का पूर्ण आगमन निहावंद में सासानी बादशाह यज़्दगुर्द तृतीय की पराजय उपरांत हुआ। इसका उल्लेख हकीम अबुलक़ासिम फ़िरदौसी ने अपनी प्रसिद्ध कृति शाहनामे में भी किया है। सासानी काल में व्याप्त अनेक वर्गीय असमानताओं, बहुदेववाद तथा ज़रतुश्ती धर्माचार्यों की नीतियों से रुष्ट ईरानी समाज इसलाम धर्म की विभिन्न उत्कृष्टताओं के कारण इसकी ओर उन्मुख हुआ।

ईरान में इसलाम धर्म उपरोक्त कारणों से शनैः-शनैः अधिकांश भाग में सहर्ष क़बूल हुआ। इससे पूर्व के धर्मों के अनुयायियों की आंशिक संख्या ईरान में विद्यमान रही तथा कुछ विश्व के अन्य भागों की ओर पलायन कर गए। धर्म समाज का अभिन्न अंग होता है इस कारण प्राचीन से अर्वाचीन सभी मुख्य घटनाएँ धर्म की धुरी पर घूमती हैं। ईरान में भी इसलाम के आगमन उपरांत परिवर्तित धार्मिक स्थिति ने इतिहास, साहित्य, मानवविज्ञान, राजनीति एवं कला आदि विभिन्न क्षेत्रों को नया स्वरूप प्रदान किया। ईरानी साहित्य में इसलामी साहित्य, अध्यात्मवाद, दर्शन, मीमांसा, धर्म-न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में ईरानी विद्वानों ने अपनी कृतियों द्वारा इसलाम धर्म का सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण किया है। यही कारण है कि अरबी भाषा के उपरांत इसलामी जगत में फ़ारसी भाषा को दूसरी इसलामी भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। पंद्रह शताब्दी के उपरांत भी फ़ारसी भाषा तथा साहित्य मध्य एशिया

एवं भारतीय उपमहाद्वीप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। दरी अर्थात् फ़ारसी साहित्य के प्रबुद्ध विद्वानों को मध्य एशिया में आदरपूर्वक हज़रत की उपाधि दी जाती है। हिंदुस्तान तथा चीन की असंख्य मस्जिदों, मक़बरों तथा मज़ारों की दीवारें फ़ारसी काव्य की पंक्तियों से अलंकृत हैं।

साहित्यिक क्षेत्र के अतिरिक्त धार्मिक ज्ञान एवं अध्यात्म के क्षेत्र में भी ईरानी अपने अथक प्रयास के फलस्वरूप अन्य इसलामी नस्लों से बहुत आगे रहे हैं। पवित्र क़ुरान के वाचन में आसिम, नाफ़े, इब्ने कसीर तथा नसाई उल्लेखनीय 'कारी' (क़ुरानवाचक) हैं। इसी प्रकार क़ुरान के टीकाकारों में पैग़ंबर के साहबा, उनके अनुचर तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष शिक्षार्थियों के अतिरिक्त तीन ईरानी टीकाकार मक़ातिल बिन सुलेमान, सुलेमान बिन मेहरान आमिश तथा याहिया बिन ज़याद फ़रा हुए हैं। इनके अतिरिक्त अनेक टीकाकार ऐसे भी हुए हैं जिन्हें विभिन्न इमामों (अय्यमा मासूमीन), जैसे अबूहमज़ा सुमाली, अबूबसीर असदी, यूनुस बिन अब्दुर्रहमान, हुसैन बिन सईद अहवाज़ी, फ़ज़ल बिन शाज़ान निशापूरी विशेष उल्लेख के अधिकारी हैं। शिक्षा टीकाकारों में अली बिन इब्राहीम क़ुमी, मुहम्मद बिन मसऊद अय्याशी, सैयद हैदर आमूली, सैयद हाशिम बौहरानी का नाम प्रसिद्ध है।

ईरानी एहले सुन्नत (सुन्नी मतानुयायी) भी क़ुरान के टीका लेखन में पीछे नहीं रहे। मुहम्मद बिन जरीर तबरी, महमूद बिन उम्र ज़मख़्शरी, इमाम फ़ख़्रे राज़ी, निज़ाम निशापूरी तथा क़ाज़ी बेज़ाई की टीकाएँ इसलामी जगत में विश्वसनीयता एवं महत्ता की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हदीस के ज्ञान क्षेत्र में भी अन्य इसलामी क़ौमों की तुलना में ईरानी अध्येताओं को प्रमुखता प्राप्त रही है। हदीस ज्ञान क्षेत्र में रचित कृति सहाहाए-सित्ता के सभी लेखक ईरानी सुन्नी मतानुयायी थे : मुस्लिम बिन हज्जाज निशापूरी, मुहम्मद बिन इसमाइल बुख़ारी, तिरमिज़ी, अबू अब्दुर्रहमान नासाई, अबू दाऊद सिजिस्तानी तथा इब्ने माजेए-क़ज़वीनी सभी ईरानी थे। इसी प्रकार ईरानी शिक्षा हदीस शास्त्रियों द्वारा लिखी गई कुतुबे-अरबया (चार ग्रंथ) के लेखक क्रमशः मुहम्मद बिन याक़ूब कुलैनी, शेख़ सदूक़ क़ुमी तथा शेख़ तूसी हैं। शिआ फ़िक़्ह (धर्म न्यायशास्त्र) में भी ईरानियों की कृतियाँ इसलामी न्यायशास्त्र के इतिहास की प्रमुख कड़ी हैं। सलार दीलमी और इब्ने हमज़े तूसी किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। समकालीन फ़िक़्ह शास्त्रियों में मुक़द्दस अर्दबीली, मुहाक़िक सब्ज़वारी, जमाल ख़ानसारी, आख़ुंद ख़ुरासानी, मिर्ज़ा हुसैन नायनी तथा इसी प्रकार एहले-सुन्नत में अबू हनीफ़ा, लईस बिन साद इस्फ़ाहानी, अब्दुल्ला बिन मुबारक मरवज़ी के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

फ़ारसी साहित्य के अतिरिक्त अनेक ईरानी विद्वानों को अरबी भाषा के गद्य एवं पद्य लेखन में तथा फ़ारसी से अरबी और अरबी से फ़ारसी अनुवाद कला में दक्षता प्राप्त थी। अब्बासी ख़लीफ़ाओं तथा अरब हाकिमों के अशिष्ट व्यवहार से रुष्ट ईरानी साहित्यकारों ने विधिवत् रूप से अरबी में उनके लिए भर्त्सनामय काव्य (हिजो निगारी) की रचना की। वास्तव में अब्बासी ख़ुलफ़ा का तख़्ता पलटने में प्रमुख भूमिका ईरानियों ने ही निभाई थी। ईरान के अरबी साहित्यकारों में युनुस बिन हबीब, अबू उबैदा, अलीबिन हमज़ा कसाई, अबू अली फ़ारसी, इब्ने कुतिब्बा, क़ुतुबुद्दीन शीराज़ी, मीर सैयद शरीफ़ जुरजानी, सालेह बिन अब्दुर्रहमान आदि प्रसिद्ध हैं। प्रमुख अनुवादक इब्ने मुक़फ़्फ़ा, हसन बिन मूसा नौबख़्ती, मूसा बिन ख़ालिद, मुहम्मद बिन बहराम इस्फ़ाहानी, मुहम्मद बरमकी बहराम बिन बहराम शाह आदि ने अरबी तथा ग़ैर-अरबी (यूनानी आदि) भाषा की विभिन्न विषयों संबंधी पुस्तकों का अनुवाद फ़ारसी में किया है। इन्हीं अनुवादकों के प्रयत्नों से यूनानी दर्शन संबंधी साहित्य की अमूल्य

रचनाएँ इसलामी शिक्षा का मुख्य अंग बनी हैं। इन्हीं दर्शन संबंधी पुस्तकों के अध्ययन एवं तुलनात्मक शोध के फलस्वरूप ईरानी विद्वानों के एक प्रमुख वर्ग में, जिन्हें 'फ़लसफ़ी' (दार्शनिक) के नाम से जाना जाता था, अबू ज़ैद बलख़ी, अबुल अब्बास सरख़सी, मुहम्मद बिन ज़करिया राज़ी, अबू नस्र फ़ाराबी, अबुल हसन अली ज़नजानी, अबू अहमद औफ़ी, इब्ने मसकूइया राज़ी, अबूरिहान बैरूनी, अबूअली सीना, सदरुद्दीन अबू अली सरख़सी, शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी, ख़ाजा नसीरुद्दीन तूसी, मुल्ला हुसैन अर्दबीली, मीर मुहम्मद बाक़र दामाद, मुल्ला सदरा (मुहम्मद बिन इब्राहीम शीराज़ी) तथा शमसुद्दीन गिलानी आदि वे विभूतियाँ हैं जिनके कार्यों ने यूनान के विद्वानों को भी संभवतः पीछे छोड़ दिया है।

तसव्वुफ़ अथवा इसलामी अध्यात्मवाद को भी प्रमुखतः सूफ़ियों के विभिन्न वर्गों एवं श्रेणियों से संबंधित ईरानी सूफ़ी तथा सूफ़ी लेखकों ने ही शीर्ष तक पहुँचाया। ईरान विभिन्न धर्मों का चिरकालीन गुरुत्व केंद्र रहा है जिसका एक मुख्य कारण इसकी भौगोलिक स्थिति है। विभिन्न धर्मों की उपस्थिति ने वहाँ के अध्येताओं को तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया है। विवेक और ज्ञान के असीम क्षेत्र को किसी धर्म विशेष की सीमाओं में सीमित न करके विस्तृत दृष्टिकोण से देखने के कारण ईरानियों ने इसलामी तसव्वुफ़ को ईरानी धर्म अथवा मानव प्रेम का धर्म घोषित किया। प्रमुख सूफ़ी जनों में हसन बसरी, इब्राहीम अधाम बल्ख़ी, शक़ीक़ बल्ख़ी, करख़ी बायज़ीद बिस्तामी, जुनैद बग़दादी, हुसैन बिन मंसूर हल्लाज, अबुल फ़ज़ल सरख़सी, अबूतालिब मक्की, अबू सईद अबिल ख़ैर, अबुल हसन हुजवेरी, ख़ाजा अब्दुल्ला अंसारी, इमाम मुहम्मद ग़िज़ाली, सनाई ग़ज़नवी, अत्तार निशापूरी, शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी, नजमुद्दीन कुबरा, जलालुद्दीन मुहम्मद बलख़ी, फ़ख़रुद्दीन इराक़ी, शेख़सादी, शेख़ महमूद शबिस्तरी, ख़ाजा मुहम्मद हाफ़िज़, शाह नेमतुल्लाह वली, अब्दुर्रहमान जामी उल्लेखनीय हैं।

विभिन्न धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण संबंधी क्षेत्रों में ईरानियों ने सकारात्मक एवं सृजनात्मक कार्य ही नहीं किए बल्कि विभिन्न कला संबंधी क्षेत्रों में भी इसलाम के एकेश्वरवाद को विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया—ललित कला, संगीत, स्थापत्य कला, वास्तुकला, नाट्यकला, सभी में ईरानियों ने अपनी गौरवमयी सभ्यता एवं संस्कृति का भली-भाँति परिचय दिया है।

सफ़वी काल में यह सभी कलाएँ अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थीं। इस काल में निर्मित मस्जिदें, कारवाँ सराय, बाज़ार मक़बरे, सभी इसलामी शिक्षाओं का प्रतीक हैं। इस काल में शिआ मत को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ क्योंकि इस वंश के संस्थापक शेख़ सफ़ी अर्दबीली तथा उनके उत्तराधिकारी शाह इसमाइल सफ़वी द्वारा प्रारंभ किए गए आंदोलन ने ही ईरान में मूलतः ईरानी शिआ राज्य मत का संस्थापन किया था।

संक्षेप में, ईरान में इसलाम धर्म को न केवल अभूतपूर्व उन्नति ही प्राप्त हुई बल्कि इसलाम धर्म का वास्तविक चित्रण ईरान तथा फ़ारसी भाषा के द्वारा ही संभव हो पाया।

ईरानी समाज

व्युत्पत्ति–ईरान शब्द अवेस्ता भाषा में 'एरिया' (Airya) प्राचीन फ़ारसी (फ़ारसी-ए-बास्तान) में 'अरिया' (Ariya) तथा संस्कृत में 'आर्या' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अवेस्ता भाषा में इस शब्द का प्रयोग ईरानी क़ौम तथा शुद्ध, कुलीन एवं अभिजात दोनों के लिए हुआ है। अवेस्ता का शब्द पारती भाषा में एरिया अर्थात् (Aryan) तथा सासानी पहलवी भाषा में इरान (Earn) के रूप में परिवर्तित हुआ जिसमें इर उपसर्ग है तथा आन संबंधसूचक प्रत्यय है। यही शब्द सासानी पहलवी में अनीरान (Aneran) अर्थात् ग़ैर-ईरानी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सासानी काल में ईरान क्षेत्र को ईरान शहर तथा यहाँ के निवासियों को ईरान शहरी कहा जाता था।

मिट्टी निर्मित मानवाकृति, ईलामी काल (300 वर्ष ई.पू.)

ईरानी क़ौम एवं परिवार–पाँचवीं सहस्राब्दी ई. पू. ईरान में आर्यों के आगमन पूर्व कुछ जातियाँ, जैसे दक्षिण-पश्चिम में ईलामी, ज़ागरूस तथा लूरिस्तान में कासी, किरमानशाह तथा ज़ागरूस में लूलई, (वर्तमान) गीलान में कादूसी, माज़िंदरान में तपूरी तथा दक्षिणी तट पर अश्वेत जाति के लोग आबाद थे। द्वितीय सहस्राब्दी के प्रथम चरण में आर्यों की पूर्वी शाखा की भारत-यूरोपीय आर्य परिवार वर्ग से संबंधित विभिन्न टोलियों ने ईरानी पठारों में प्रवेश किया। इन प्रवासी परिवारों में मुख्यतः माद, पारस, सक्का, पारत, बाख़्तर और सुग्द उल्लेखनीय हैं। संभवतः इनमें से अधिकांश विशुद्ध नहीं थे क्योंकि इनमें उत्तर तथा दक्षिण वर्गों की शारीरिक विशेषताओं –जैसे उत्तर का लंबा कद, चमकदार आँखें एवं बाल, दक्षिणी छोटा कद, गहरे काले रंग के बाल एवं आँखों का मिश्रण था। इसी प्रकार इनकी बोलियाँ विभिन्न भाषाओं का मिश्रण थीं जो उनके मिश्रित परिवार की ओर संकेत करती हैं। इसका स्पष्ट चित्र हमें विभिन्न राज्यों के पृथकीकरण से मिल सकता है : पूर्वी तथा पश्चिमी आज़रबाईजान, इस्फ़ाहान, समनान, सीस्तान, बिलोचिस्तान,

फ़ारस, कुर्दिस्तान, किरमान, कहगीलूइये, बवीर अहमद, तेहरान, चहार महाल तथा बख्तियारी, ख़ुरासान, लूरिस्तान, केंद्रीय माज़िंदरान, हरमुज़गान, हमादान तथा यज़्द सभी आर्य जाति के विशुद्ध ईरानी हैं। इसी प्रकार ईलाम राज्य निवासी (अर्थात् ग़ैर-आर्यायी) कुर्द, लूर तथा लक जाति के हैं। मान्यता है कि गीलान के प्राचीन निवासियों को जो मूलतः माज़िंदरान के समुद्र के साथ लगे मैदानी तथा अलबुर्ज पहाड़ियों की घाटियों में रहते थे, गील अथवा गिल एवं अमारद नस्ल से संबंधित बताया गया है। किरमान शाह के निवासी कुर्दों की भाँति वास्तव में माद-आर्य जाति के हैं। भौगोलिक स्थिति के कारण बू-शहर में भूमध्यसागरीय प्रजातियों के अतिरिक्त अनेक जातियाँ, जैसे, द्राविड़ी, श्याम वर्ण जाति, सामी, ईलामी सूमेरी, नूरदिक, कुर्द, लूर, बहबानी और अरब आदि हैं। समय-समय पर इनमें से कुछ प्रजातियां जो मूलतः इस क्षेत्र से संबंधित नहीं हैं, यहाँ आ बसी हैं। ख़ुज़िस्तान के मूल निवासी ईलामी हैं जो ईरानी पठारों में चतुर्थ सहस्राब्दी ई. पू. आए थे लेकिन समय की करवटों के साथ-साथ यहाँ लूर, अरब, तुर्क एवं अन्य कई प्रजातियाँ भी आकर बस चुकी हैं।

भाषा तथा स्थानीय बोलियाँ–फ़ारसी भाषा भारत-यूरोपीय भाषा परिवार की भारत-ईरानी प्रजाति से संबंधित है। वर्तमान काल में इस भाषा की निम्नलिखित बोलियाँ ईरान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं :

(क) **उत्तरी ईरान** में मुख्यतः तालशी, गीलकी, दीलमानी, माज़िंदरानी, गुर्गानी आदि बोलियां कैस्पियन सागर (दरया-ए-माज़िंदरान) के दक्षिणी तथा दक्षिण-पश्चिमी तटों पर तथा अलबुर्ज़ पहाड़ी शृंखला के उत्तरी घाटी क्षेत्रों में बोली जाती हैं।

(ख) **पूर्वी ईरान** के प्रदेशों, ख़ुरासान, सीस्तान, बिलोचिस्तान तथा किरमान में विभिन्न अभिसारी बोलियाँ बोली जाती हैं।

(ग) **दक्षिणी ईरान** में विभिन्न प्राचीन बोलियाँ हैं जिनमें बुशागर्दी बोली, मकरान तथा फ़ारस खाड़ी की बोली तथा लार एवं फ़ारस क्षेत्र की बोली है। फ़ारस की फ़ारसी बोली को ही आधुनिक फ़ारसी का मुख्य स्रोत जानना चाहिए।

(घ) **मध्य ईरान** में विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं। इनमें क़ुम शहर तथा निकटवर्ती क्षेत्रों की बोली, नतनज़ तथा निकटवर्ती क्षेत्र की बोली, काशान, मीमे, राबंद, क़हरूद तथा आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों की बोली, इस्फ़हानी बोली तथा निकटवर्ती क्षेत्रों की प्रमुख बोलियों में सूई, किश्शेई, ज़क्रेई, जरकूईये, सदही, गज़ी, क़मशेई आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार मध्य ईरान के अन्य भागों की बोलियों में जूशक़ानी, नीशूनी, गुलपायगानी, ख़ानसारी, महल्लाती, सिवंदी, नाइनी, अनारकी, उर्दिस्तानी, बफ़्सी, आश्तियानी, कहकी, ख़ूरी, बयाबानकी, जंदक़ी, यज़्दी तथा उन्हीं क्षेत्रों के ज़रतुश्ती लोगों तथा क़हस्तान की बोली शामिल है।

(ङ) **पश्चिमी ईरान** की बोलियों में सबसे महत्त्वपूर्ण कुर्द लोगों की बोली कुर्दी है। कुर्दों में शहरवासी, किसान, क़बीलाई तथा पशुपालक आदि सभी समूह सम्मिलित हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें भाषा के प्राचीन तत्त्वों को सुरक्षित रखा गया है तथा इसका अपना लिखित साहित्य भी है।

आवास–विभिन्न प्रकार की जलवायु के कारण प्रत्येक क्षेत्र की आवासीय पद्धति भी भिन्न है। जलवायु की

भिन्नता ने रहन-सहन, स्थापत्य कला, गृह-निर्माण सामग्री आदि को भी प्रभावित किया है। इसलिए ईरान के पहाड़ी क्षेत्रों में घर पृथक् तल पर तथा उनकी छतें सपाट तथा दीवारें पत्थरों से निर्मित हैं।

मैदानी इलाकों में प्रायः घर कच्ची ईंटों से बनाए जाते हैं। छतें गुंबदाकार तथा दीवारें अधिक चौड़ी होती हैं। बनांचल में अधिकांश घरों की दीवारें लकड़ियों के फट्टों तथा छतें मिट्टी तथा लकड़ी के फट्टों से बनाई जाती हैं। क़बाइली तथा बंजारे गर्मियों में ठंडे क्षेत्रों (ग्यलाक़) तथा सर्दियों में गर्म क्षेत्रों (क़िशलाक़) में दव्वार (भेड़-बकरी के बालों से बने कपड़े) के ख़ेमे तानते हैं।

धार्मिक स्थलों में ईरान की इसलामी स्थापत्य कला विशेषतः दर्शनीय है। ईरानी-इसलामी मिश्रित स्थापत्य कला भी मस्जिदों, इमामबाड़ों तथा प्राचीन इमारतों में देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी देशों की वास्तुकला का अनुसरण महानगरों में बहुत प्रचलित है। घरों की बनावट विशेषतः गृह-मुख भी विभिन्न वास्तुकलाओं का परिचायक है। अगर घर का मुँह दक्षिण अर्थात् क़िबले के सम्मुख हो तो उस घर की बनावट में इसलामी प्रभाव झलकता है। महानगरों से दूर छोटे शहरों में पुराने घर अपनी बनावट तथा शैली के लिए प्रसिद्ध हैं, जैसे काशान के अनेक पुराने घरों को पुरातत्त्व एवं पर्यटन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण राष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर घोषित किया गया है।

ईरानी परिवार–ईरानी समाज में परिवार की भूमिका वैचारिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए समाज में परिवार को सम्मानजनक एवं पवित्र इकाई का स्थान दिया जाता है। ईरानी परिवार वैयक्तिक अस्तित्व तथा पहचान का केंद्र समझा जाता है। यद्यपि वर्तमान काल में सामाजिक परिस्थितियाँ परिवर्तनशील हैं लेकिन आज भी परिवार का मुखिया पिता ही होता है। परिवार की यह इकाई रीढ़ की हड्डी का काम करती है। इसलिए पारिवारिक संपत्ति, मकान तथा वंश का चलन पिता के नाम पर ही होता है। बच्चे, उनका नामकरण, वैवाहिक संबंध, तलाक़ आदि इसलामी न्यायशास्त्र के अनुसार होता है। ईरानी परिवार का गठन प्रचलित प्रथाओं मुख्यतः इसलामी सिद्धांतों के ढाँचे पर आधारित है। पारिवारिक रीति-रिवाजों का पालन बंधन की अपेक्षा पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान के लिए किया जाता है। शहरों में परिवार पति तथा पत्नी से होता है लेकिन ग्रामीण वातावरण में परिवार परंपरानुसार एक सामूहिक इकाई का नाम है। गाँव में संपत्ति एवं जायदाद का स्वामित्व एवं बँटवारा भी सामूहिक रूप से किया जाता है।

वैवाहिक संबंध–ईरानी समाज में विवाह इसलामी दृष्टिकोण से धार्मिक कृत्य समझा जाता है। समाज एवं परिवार की निरंतरता इस कृत्य पर आधारित है। वैवाहिक संबंध स्थापित होने से दो परिवारों अथवा दो समुदायों में संबंध स्थापित होता है तथा घनिष्ठता बढ़ती है और मानव प्रेम का प्रसार होता है। वास्तव में स्त्री अथवा पत्नी की भूमिका पारिवारिक इकाई में अधिक प्रभावकारी होती है क्योंकि स्त्री ही जननी होती है और उसी से परिवार आगे बढ़ता है। प्राचीन परंपरानुसार क़बाइली परिवारों में लड़के-लड़कियों की शादियाँ जल्दी कर दी जाती हैं। जो लड़के-लड़कियाँ अविवाहित रह जाते हैं, समाज में उनका सम्मान नहीं होता। बवीर अहमद में अगर कोई लड़की शादी नहीं करती है तो उसे 'दिल्ला' कहा जाता है। वैवाहिक रस्मों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

शीरबहा और मेहर–शीरबहा अर्थात् 'स्तनपान' मूल्य–कुछ राशि अथवा कोई उचित वस्तु जो दूल्हे के परिवार

की ओर से दुल्हन के परिवार को निकाह के ख़ुतबे से पूर्व अदा की जाती है। राशि की मात्रा दोनों परिवारों की परस्पर सहमति से तय की जाती है। इसकी अदायगी के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. दुल्हन का दहेज़ संयोजित करने के सहायतार्थ।

2. दुल्हन के माता-पिता अर्थात् परिवार के सम्मानार्थ।

3. दुल्हन के पालन-पोषण पर हुए ख़र्च में अंशदान हेतु।

4. विशेषतः दुल्हन की माँ के सम्मानार्थ, जिसने बेटी को दूध पिलाकर बड़ा किया।

इसी कारण इस रस्म को शीरबहा अर्थात् 'स्तनपान मूल्य' कहा जाता है।

इसलामी रीति अनुसार दूल्हे की ओर से दुल्हन को दी जाने वाली मेहर की राशि भी ख़ुतबे से पूर्व तय की जाती है। दूल्हा चाहे तो इसे अग्रिम राशि के रूप में दे सकता है अथवा वह प्रतिज्ञाबद्ध होता है कि दुल्हन जब चाहे उससे यह राशि माँग सकती है। राशि की मात्रा परिवार की सामाजिक मान-मर्यादा एवं आर्थिक सामर्थ्य तथा लड़की की सुंदरता पर भी निर्भर करती है।

जहेज़ (अथवा दहेज़)–विवाह के समय दुल्हन को उसके माँ-बाप उचित दहेज़ देते हैं जिससे कि वह अपना नया घर बसाने में समर्थ हो सके। अधिकांशतः यह सामान परिवार वाले अपनी सामर्थ्य तथा वर्गानुसार देते हैं। इस सामान में नया जीवन शुरू करने के लिए आवश्यक वस्तुओं के साथ हस्तनिर्मित कालीन भी होता है।

तलाक़–यद्यपि समाज में इस कृत्य को अधिक पसंद नहीं किया जाता तथा यथासंभव वैवाहिक संबंध बनाए रखने के लिए उपदेश दिया जाता है ताकि इसके दुष्परिणामों से हर अवस्था में बचा जाए। क्योंकि इससे परिवार की केंद्रीय शक्ति का ह्रास होता है एवं परिवारों के मध्य कड़वाहट उत्पन्न होती है। तथापि वैवाहिक संबंध विच्छेद अर्थात् तलाक़ शिआ मतानुसार होते हैं।

व्यंजन एवं भोजन–संपूर्ण ईरान में पलु, आबगोश्त, चिलु-कबाब, कबाब एवं आश आदि व्यंजन सभी स्थानों पर एक समान हैं। पलु अर्थात् पुलाव में थोड़ा-सा घी अथवा मक्खन डाला जाता है। इसमें सब्ज़ी, गोश्त, किशमिश एवं ज़ीरा रुचि अनुसार डालते हैं।

आबगोश्त में भेड़ के गोश्त के छोटे-छोटे टुकड़े, आलू, टमाटर तथा मोटा कुटा अनाज डाला जाता है। इसमें शोरबे की मात्रा अधिक रखी जाती है। प्रथानुसार इसे एक बड़े पात्र में रोटी के साथ परोसा जाता है। रोटी के टुकड़ों को इसमें भिगोकर तथा प्रायः दम्बे से कूटकर बड़े चम्मच से खाया जाता है।

पके हुए चावल को चिलु कहते हैं। चावल को पकाकर तथा माँड़ निकालकर या निथारकर दोनों प्रकार से खाया जाता है। माँड़युक्त चावल को 'दमी' अथवा 'कत्ता' कहा जाता है। इसमें भी सब्ज़ी, गोश्त अथवा कुटा हुआ अनाज मिलाया जा सकता है। कोयले पर भुने गोश्त के टुकड़ों को कबाब कहते हैं। चिलु कबाब अति रुचिकर भोजन माना जाता है। कबाब के साथ भुने हुए (रोस्टेड) टमाटर, कच्चा अंडा अथवा मक्खन का प्रयोग भी आनंदवर्धक होता है।

खुरूश–रोटी अथवा चावल के साथ बनी हुई सब्ज़ी या डिश को खुरूश कहते हैं। यह कई प्रकार की होती है तथा गोश्त में सब्ज़ी, फली, दाल, मसाले अथवा कुटा हुआ अनाज आदि मिलाकर गाढ़े शोरबे (ग्रेवी) के साथ बनाई जाती है। ईरानी व्यंजन क्षेत्रीय आधार पर अनेक प्रकार के हैं।

नान–नाना प्रकार के भोजन में नान अर्थात् एक प्रकार की रोटी मुख्य भोजन है। ईरानियों की मान्यतानुसार नान ख़ुदा की नेमत है। यह लगभग चालीस प्रकार की होती है। इनमें मुख्यतः नाने-संगक, नाने-बिरिश्ते, नाने-पलाश एवं शीरमाल आदि उल्लेखनीय हैं।

आश–यह पतली खिचड़ी समान एक व्यंजन है। इसमें सेवियाँ (नूडल्स), सब्ज़ी, गोश्त, अनाज तथा सूखे मेवे आदि डाले जाते हैं। यह भी विभिन्न प्रकार से बनाया जाता है।

उपरोक्त व्यंजनों के अतिरिक्त त्योहार, उत्सव तथा शादी के अवसरों पर विभिन्न प्रकार के अन्य स्वादिष्ट व्यंजन बनाए जाते हैं। नौरोज़ के अवसर पर स्वादिष्ट व्यंजनों के बनाने एवं पकाने का विशेष प्रबंध किया जाता है।

शादी के अवसर पर मीठे चावल बनाने का ईरान में बहुत प्रचलन है उसमें नारंगी के टुकड़े, ज़ाफ़रान, किशमिश, पिस्ता आदि भी रुचि अनुसार डाले जाते हैं। मुहर्रम में भी विशेष प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। इनमें मुख्यतः आटे का बना हलवा होता है। इसी प्रकार हलीम का प्रयोग प्रायः सर्दियों में होता है। मुहर्रम में एक प्रकार का आश, 'शुल्ले ज़र्द' बाँटने के लिए बनाया जाता है।

देसी जलपान-गृह (क़हवे ख़ाने-ए-सुन्नती)

समुद्री तटों पर रहने वाले परिवारों में विभिन्न प्रकार की मछली खाने का शौक़ अपेक्षाकृत अधिक है। वैसे भी नौरोज़ के अवसर पर मछली का विशेष महत्त्व होता है।

सामान्यतः नाश्ते में पनीर, मक्खन, शहद, फल, ताज़ा रूमाली रोटी अथवा नाने-संगक एवं चाय का सेवन किया जाता है। गर्म दूध की बजाय डिब्बाबंद ठंडा दूध पीने का शहरों में अधिक प्रचलन है। चाय बिना दूध के पी जाती है तथा चीनी अथवा शुगर क्यूब चाय के साथ अलग से प्रस्तुत किए जाते हैं। चाय अधिकांश शीशे के छोटे ख़ूबसूरत गिलास में पी जाती है। ईरान में चाय पीने का बहुत रिवाज है। चाय बनाने के लिए एक विशेष पात्र, 'समावार' का

प्रयोग किया जाता है। यह रूसी सभ्यता की ईरान को देन है। शीत पेय में लस्सी, ख़रबूज़े तथा केले का शेक अर्थात् शर्बत एवं मिले-जुले फलों के रस का बहुत चलन है।

विभिन्न प्रकार के सूखे मेवे ईरान में प्रचुरता से उपलब्ध हैं। मिश्रित मेवों को आजील कहा जाता है तथा चाय के साथ इन्हें पेश किया जाता है।

ताज़ा फल सदैव खाने अथवा चाय के साथ परोसे जाते हैं। ईरानियों में फल खाने का शौक़ अधिक है।

ईरान में मिठाइयाँ अधिक प्रकार की नहीं हैं। यद्यपि उपलब्ध मिठाइयाँ स्वादिष्ट एवं मज़ेदार होती हैं। इनमें मुख्यतः गज़ (भारतीय गज़क शायद इसी का रूप है), जुलेबिया (जलेबी), कुत्ताब, सोहान (सोहन हलवा), बाकलवा, बामिया आदि हैं। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के केक, पेस्ट्री, बिस्कुट, चॉकलेट, टॉफी आदि प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध हैं।

विभिन्न प्रकार के अचार भी प्रयोग किए जाते हैं। इनमें रीठा, आम तथा मिश्रित अचार प्रायः खाने के साथ परोसे जाते हैं। जैली तथा मीठी चटनी बनाने का शौक़ भी ईरानियों में है।

वस्त्र–ईरान के विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु, रीति-रिवाज तथा धार्मिक नियम एवं प्रथा के अनुसार वस्त्रों की विविधता देखने को मिलती है। महानगरों के अतिरिक्त जनसंख्या का विशाल भाग गाँवों, मैदानों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में रहता है। क़बाइली तथा बंजारों के विभिन्न समूह हैं। उनके विविध प्रकार के वस्त्र ही उनके पहचान-चिह्न हैं। वस्त्र केवल शरीर ढाँपने का माध्यम ही नहीं बल्कि आकर्षण एवं सुंदरता का भी प्रतीक है। बेल-बूटे कढ़े हुए ज़री युक्त, मोतियों एवं दानों से सुसज्जित, चुन्नटदार, फुँदने लगे हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़ों के बने वस्त्र व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग विशेष की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का दर्पण हैं।

क़बाइली परिवार में विवाहोत्सव पर स्त्रियों की पारंपरिक वेशभूषा (आबयाने, काशान)

वस्त्रों की विविधता का सुंदर दर्शन क़बाइली लोगों, विशेषतः स्त्रियों के वस्त्रों को देखकर होता है। ग्रामीण, पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों की स्त्रियों के पहनावे में ज़री, क्रोशिया, सलमा-सितारे जड़ित कार्य दर्शनीय होता है। स्त्रियाँ सिर एवं मुख ढाँपने के लिए विविध प्रकार के स्कार्फ़, ओढ़नी, टोपी यहाँ तक कि मुँड़ासे के आकार के आवरणों का

प्रयोग करती हैं। विभिन्न प्रकार के सिर ढकने के वस्त्र सादे न होकर रंग-बिरंगे बेल-बूटे कढ़े हुए फुँदनेदार, सलमा-सितारों के अतिरिक्त पूर्व शाही परिवारों, विशेषतः क़ाजारी काल के सोने-चाँदी के पुराने अथवा नए सिक्कों, अशरफ़ियों आदि से सजे होते हैं। इसीलिए इनके नाम कुलाह-ओ-पुलक (कुलाह अर्थात् टोपी : पंजाबी भाषा में कुल्लाह इसी शब्द का विगड़ा रूप है) कुलाह-ओ-लीरा आदि रखे गए हैं। मुख एवं सिर ढकने के वस्त्र भी विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। इनमें मुख्यतः रूसरी, चारकब, मकन्आ (जिसे प्रायः तुर्की स्त्रियाँ पहनती हैं) तथा दस्तार आदि हैं। आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के अनुसार स्त्रियाँ इन्हें पहनती हैं। ईरान के सभी भागों में स्त्रियाँ (विशेषतः घर से बाहर निकलते समय) सिर से घुटनों तक के भाग को ढकने के लिए प्रायः चादुर (चादर, बड़ी ओढ़नी) का प्रयोग करती हैं। काले रंग के अलावा छींट की चादुरों का चलन भी प्रायः देखा जा सकता है।

क़बाइली परिवार

परंपरागत वेशभूषा में शीराज़ी लड़की

शरीर के ऊपरी भाग के वस्त्र को पिराहन (कमीज़) कहते हैं जो विभिन्न प्रकार का होता है। लंबी आस्तीन और लंबाई में नीचे तक का यह वस्त्र विभिन्न प्रकार के कपड़ों का बना होता है। कपड़े की क़िस्म भी जलवायु तथा सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। इन पर भी कढ़ाई, बेल-बूटे, चुन्नट अथवा क्रोशिया का सुंदर काम होता है। गले के भाग पर रंग-बिरंगे रिबन सिल दिए जाते हैं। प्रायः यह रेशमी तथा ऊनी होते हैं। सूती वस्त्रों का चलन भी बहुत है। स्त्रियाँ जलवायु अनुसार निचले वस्त्र पहनती हैं। लंबी स्कर्ट, चुस्त पाजामे (अधिकांश क़बाइली स्त्रियों में प्रचलित हैं), लंबे कोट तथा पैंट का रिवाज है। विविध प्रकार के आभूषण धारण करने की रुचि प्रायः प्रत्येक क्षेत्र के लोगों में है। अँगूठियों में पवित्र नगर मशहद का प्रसिद्ध फ़िरोज़ा पत्थर अधिकतर धारण किया जाता है।

क़बाइली पुरुषों और क्षेत्रीय लोगों का पहनावा विविध प्रकार का है।

इनमें विभिन्न प्रकार की कमीज़, कोट, शलवार (पैंट), पिराहन (कमीज़) आदि वस्त्र आम हैं। पैंट अधिकतर चौड़ी तथा प्लीट्स (चुन्नट) वाली होती है। कमीज़ों के आकार विविध प्रकार के हैं, जैसे बलोच पुरुषों की कमीज़ घुटनों तक लंबी होती है। विविध प्रकार की टोपी पहनने का रिवाज भी है। इनमें बलोच 'अर्क़ीन' (पसीना-सोख), कुर्द 'कुलाह', सोस्तानी 'दस्तार' (पगड़ी) पहनते हैं। ईरान में नमाज़ पढ़ते समय टोपी पहनना अनिवार्य नहीं है। महानगरों में पुरुष पश्चिमी ढंग के वस्त्र पहनना अधिक पसंद करते हैं। कोट, पैंट, जैकिट, सर्दियों में ओवरकोट आदि पुरुषों का पहनावा है। पिछले दो दशक से कोट-पैंट के साथ टाई लगाने का प्रचलन कम रहा है। कमीज़ों के कॉलर भी कई प्रकार के हैं। खड़े कॉलर को हुसैनी कॉलर कहते हैं। कोट-पैंट सर्दी एवं गर्मी दोनों में पहनने का चलन है।

त्योहार—ईरानी संस्कृति एवं सभ्यता में त्योहार एवं उत्सव प्राचीन काल से प्रचलित हैं। प्रायः ईरानी त्योहार दो धाराओं में विभाजित हैं : (1) धार्मिक (अर्थात् इसलामी) त्योहार (2) राष्ट्रीय (अर्थात् इसलाम पूर्व काल से प्रचलित) त्योहार।

(1) धार्मिक त्योहारों में ईद-उल-फ़ितर, ईदे-क़ुर्बान अथवा ईद-उज्ज़ुहा, ईद मिलाद-उन-नबी, ईद-मिलाद अमीर-उल-मोमनीन अली आदि बड़े उत्साह के साथ मनाई जाती हैं।

(2) राष्ट्रीय उत्सवों में नौरोज़ महत्त्वपूर्ण है। ईरान का सबसे महत्त्वपूर्ण यह त्योहार प्रथम फ़रवरदीन (21 मार्च) (ईरानी पंचांग का प्रथम दिन) को मनाया जाता है तथा यह इतिहास पूर्व कालीन राजा जमशीद के काल से प्रचलित है। आर्यों के आगमन के उपरांत कृषि अन्य व्यवसायों की अपेक्षा जीवन-यापन का मुख्य साधन रहा है। प्राचीन काल से आयोजित हो रहे अधिकांश त्योहार, जैसे जश्ने-तीरगान, मेहरगान, सदेह, चहार शंबे आदि फसलों की बुवाई-कटाई से संबंधित उत्सव हैं।

नौरोज़—पौराणिक कथाओं पर आधारित इस त्योहार का आयोजन पूरे जोश से संपूर्ण ईरान में दर्शनीय होता है। जशन अर्थात् त्योहार शब्द की व्युत्पत्ति पहलवी शब्द 'यज' से स्वीकृत की गई है। यज का अर्थ प्रार्थना तथा उपासना है। त्योहार के आगमन से पूर्व घर की व्यर्थ तथा बेकार वस्तुओं को फेंककर घर को अच्छी तरह सजाया जाता है (जैसे भारत में दीपावली के अवसर पर)। इस सजावट कार्य को 'ख़ाने-तकानी' कहा जाता है। नौरोज़ के दिन की प्रार्थना नव वर्ष का प्रारंभ तथा अच्छे कार्य एवं मनोरथ पूर्ति के लिए की जाती है। इस दिन सात खाद्य पदार्थ समेत अन्य वस्तुएँ, जिनका नाम 'सीन' (स ध्वनि) से प्रारंभ होता है, दस्तरख़ान पर सजाई जाती हैं। इनमें सब्ज़ (दूब), समलू (गेहूँ के कुल्ले की लपसी), सिंज़िद (एक पादप), सूमाक़ तला, सीर (लहसुन), सुबुल (एक पुष्प पादप) और सिरका शामिल हैं। वस्तुओं का चयन क्षेत्र विशेष पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त दस्तरख़ान पर रोटी, शाक, रंगा हुआ अंडा, दर्पण, इसपंद, रंगीन मोमबत्ती, पानी भरा रंगीन शीशे का पात्र, पुष्प, मिठाई, पानी में जीवित मछलियाँ एवं धर्मानुसार धार्मिक पुस्तक रखते हैं। सुंदरता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता एवं समृद्धि का प्रतीक अनाज अथवा दाल एक पात्र में उगाई जाती है और सीज़दह-बदर (नौरोज़ के तेरहवें दिन के उत्सव) तक उसकी देखभाल की जाती है। नौरोज़ वसंत ऋतु के आगमन की शुभ सूचना देने वाला त्योहार है। ईरान में वसंत ऋतु का मौसम सबसे रंगीन एवं स्फूर्तिदायक है। वर्ष का प्रारंभ होने के कारण भी इस त्योहार की बहुत महत्ता है।

चहार शंबा सूरी—सौर वर्ष के अंतिम बुधवार को मनाए जाने वाले इस त्योहार पर लकड़ियों को जलाते हैं तथा

उसके इर्द-गिर्द उछलकर प्रसन्न होते हैं। वास्तव में यह सर्दी के समापन तथा बहार के आगमन का सूचक है। यह त्योहार दक्षिणी ईरान में विशेषतः बड़े उल्लास से आयोजित किया जाता है। इसकी कुछ विशेषताएँ भारत में मनाए जाने वाले होली-पर्व के समान हैं।

प्राचीन काल में मास के प्रत्येक दिन का एक विशेष नाम रहा है। कुछ दिनों तथा महीनों के नाम एक समान थे जैसे मेहर एक दिन का नाम भी था और महीने का भी। जब वर्ष के किसी महीने में उसी नाम का दिन आता था तो उसको त्योहार के रूप में मनाया जाता था। इसी प्रथानुसार मेहरगान तथा तीरगान त्योहार मनाए जाते हैं। मेहरगान का पर्व मैत्री एवं सच्चाई के संकल्प का द्योतक है।

धर्म–ईरान राज्य का सरकारी धर्म इसलाम तथा मत अधिकांश ईरानियों का जाफ़री अस्ना-अशरी (बारह इमामों के अनुयायी शिआ संप्रदाय जिनकी मान्यतानुसार बारहवें इमाम 'इमाम मेहदी' लुप्त हैं जो उचित समय पर प्रकट होंगे) है। वे इसलाम के सिद्धांत एवं मूल तत्त्वों (अरकाने-असासीः चार मूलभूत तत्त्व—नमाज, रोज़ा, हज एवं ज़कात) में पूर्ण आस्था रखते हैं। शिआ मुसलमानों के अतिरिक्त सुन्नी मत के अनुयायी भी ईरान के नागरिक हैं। राज्य के सभी नियम शरीअत के अनुसार बने हैं। अन्य मतानुयायी जैसे, हनफ़ी, शाफ़ई, मालिकी, हबली एवं ज़ैदी भी ईरान के निवासी हैं। इसलाम धर्म के अतिरिक्त अन्य मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यक धर्मों में ज़रतुश्ती, यहूदी, ईसाई, अरमनी तथा नस्तूरी अथवा आसूरी धर्मों के मानने वाले भी हैं। इनको ईरानी संसद में उचित प्रतिनिधित्व भी प्राप्त है।

अन्य प्राचीन सभ्यताओं की भाँति विभिन्न प्रकार के खेल, ललित एवं हस्तशिल्प कलाएँ, लोक साहित्य आदि ईरान में भी लोकप्रिय रहे हैं। इनका विवरण इसी पुस्तक के अन्य अध्यायों में दिया गया है।

ईरान के प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक

ईरानी सभ्यता विद्यमान प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार मानव जाति के प्राचीन जीवन के अनेक चिह्न यहाँ पाए गए हैं। अनेक प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक, भवन तथा टीले आदि पर शेष रह गए खण्डहर तथा उत्खनन कार्य में प्राप्त अनेक वस्तुएँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। आधुनिक शोध परिणामों के अनुसार प्राचीन स्मारकों, भवनों एवं खण्डहरों की संख्या लगभग चार हज़ार है।

इन अवशेषों में पुरापाषाण युग, नवपाषाण युग, पाषाण युग, लौह, कांस्य एवं धातु युग अर्थात् इतिहास पूर्व युग की सभी इकाइयों के प्रमाण सम्मिलित हैं। इन सबका अस्तित्व ही ईरानी सभ्यता के प्राचीन एवं धनी होने का उत्तम प्रमाण है। इसी प्रकार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वर्गीकृत प्रत्येक काल से संबंधित स्मारक क्रमशः उस काल के वैभव का दर्पण है।

ज़ीगूरात, चग़ाज़ंबील

ईरानी सभ्यता के प्राचीन अवशेषों की ओर विश्व के पुरातत्त्ववेत्ताओं का ध्यान सर्वप्रथम एक इतालवी भ्रमणकारी वोरावारू ने अपने यात्रा वृत्तांत (सफ़रनामा) के द्वारा सन् 1472 ई. में आकृष्ट किया। उसके उपरांत सन् 1685 ई. में एक जर्मन डॉ. अंलग वर्ट थेम्कर ने तख़्ते-जमशीद के शिलालेखों की लिपि ख़त्ते-मीखी अर्थात् कीलाक्षर (cuniform

script) को पहली बार लिपि का नाम दिया तथा वह अपने साथ शिलालेखों की नक़ल जर्मनी ले गया। उसके लगभग 150 वर्ष उपरांत सन् 1837 ई. में एक जर्मन इतिहासकार गियोरक फैड्रिक गोर्टफ्रैंड ने इस लिपि के बीजवाचन की गुत्थी सुलझाई तथा इस लिपि को पढ़ने में सफल हुआ। क़ाजार शासन काल में ईरान में तैनात उपरोक्त जर्मन इतिहासकार के कार्य से अनभिज्ञ एक अंग्रेज़ सेना अधिकारी हैनरी राविलनसन ने बीस्तून, हमादान के गंजनामे के शिलालेखों की इस लिपि को कुछ भिन्न ढंग से पढ़ लिया तथा इसके उच्चारण पर दक्षता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार ईरान के यह महत्त्वपूर्ण प्राचीन अवशेष पुरातत्त्ववेत्ताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते रहे। इस दिशा में सर्वप्रथम अंग्रेज़ पुरातत्त्ववेत्ता विलियम कैंट ने सन् 1849-51 ई. में ईलामियों की राजधानी शूश में उत्खनन कार्य किया तथा ईलामियों के बारे में कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कीं। उसका शोध कार्य प्राचीन ईरान के इतिहास लेखन का प्रारंभ माना जाता है।

यहाँ सभी ऐतिहासिक स्थलों के अवशेषों के बारे में किए गए शोध कार्य तथा आजकल चल रहे शोध कार्य का पूर्ण विवरण देना तो संभव नहीं है लेकिन इस कार्य का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

1. इतिहास पूर्व काल

(क) ईरान के पुरापाषाण कालीन अवशेष–सन् 1966 ई. में पुरातत्त्ववेत्ताओं तथा जीवाश्म वैज्ञानिकों के एक दल ने बिलोचिस्तान क्षेत्र के लादिज़ एवं मशकिद क्षेत्रों में उत्खनन एवं शोध कार्य किए। वहाँ से प्राप्त पुरापाषाण युग संबंधी औज़ारों से उस क्षेत्र में लगभग 80,000 वर्ष पूर्व बसे हुए लोगों की सभ्यता के बारे में पता चला है।

(ख) ख़ुरासान क्षेत्र में मानव जाति की व्युत्पत्ति संबंधी अवशेष–मशहद से 40 कि. मी. दूर एक बरसाती नदी के निकटवर्ती क्षेत्र में ऐसे अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनसे पता चलता है कि ईरानी पठार में मानव जाति का आविर्भाव लगभग 80,000 वर्ष पूर्व हुआ था। यह नदी (प्लीयूसन) उस काल में इस क्षेत्र में पूरी तरह प्रवाहमान थी लेकिन कालांतर में यह शुष्क हो गई। यहाँ से प्राप्त तेज़ धार के पाषाण औज़ारों से पता चलता

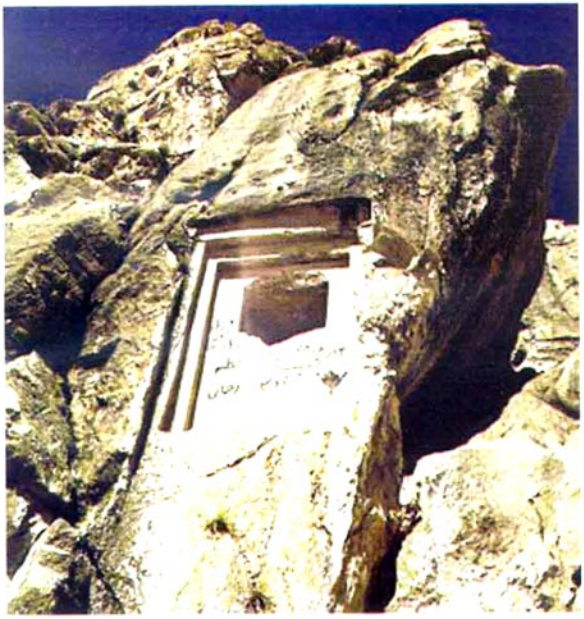

दुकाने-दाउद (सरे-पुले ज़हाब)

है कि इस नदी के दोनों ओर मानव जाति की बसावट थी।

(ग) मध्य पुरापाषाण कालीन अवशेष–इस काल की बू-शहर के निकट कमरबंद तथा होतो, बीस्तून में शिकारचियान, अरूमिया में तमतमा तथा अफ़ग़ानिस्तान सीमा के संलग्न क्षेत्र ख़ूनिक में विद्यमान गुफाएँ उल्लेखनीय हैं। इन गुफाओं पर पश्चिमी देशों के विख्यात पुरातत्त्ववेत्ताओं, जैसे अमरीकी पुरातत्त्वविज्ञानी कालटेन कोन द्वारा किए गए शोध से पता चलता है कि यहाँ बारादुस्तियान सभ्यता का विकास था। कमरबंद गुफा में हुए उत्खनन कार्य से ज्ञात हुआ है कि वहाँ पुरापाषाण काल से नवपाषाण काल तक के छः स्तर विद्यमान हैं जो वहाँ विभिन्न कालों में आवासित लोगों का पता देते हैं। यहाँ प्राप्त अवशेषों में चकमक पत्थर से बने चाकू, शार्क मछली की अस्थियाँ तथा मानव जाति (एक लड़की) का कंकाल भी प्राप्त हुआ है। इन खोजों से उत्तर-पूर्वी ईरान में लगभग 50-60 हज़ार वर्ष पूर्व से गुफा-जीवन के इतिहास का पता चलता है।

नवपाषाण युग मानव सभ्यता में एक बड़ा परिवर्तन माना जाता है क्योंकि इस युग में मानव जाति की आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों का विकास हो चुका था। शिकार करके भूख मिटाने की बजाय मानव ने पोषण के लिए खाद्य उत्पादन अर्थात् खेती-बाड़ी का कार्य आरंभ कर दिया था। पशुओं को मारने की बजाय उनको पालतू बनाकर उनका सदुपयोग करना शुरू कर दिया था। इसी युग में बर्तन बनाने से लेकर गृह निर्माण कार्य में मिट्टी का प्रयोग किया जाने लगा।

गृह निर्माण कार्य में लकड़ी अथवा बाँस की छतों का निर्माण भी होना प्रारंभ हुआ। संक्षेप में, सामूहिक अथवा सामुदायिक रूप से मानव जाति एक स्थान पर निवास करने लगी। यह ग्राम तथा आगे चलकर नगर स्थापन की दिशा में पहला क़दम था। ईरान में उपरोक्त युग की झलकियाँ किरमानशाह के तप्पा-ए-सिराब (सिराब टीला), हसन दर्रा-ए-गंज का टीला, शाहरूद का संग चख़माक (चकमक पत्थर) का टीला, ख़ुज़िस्तान के चग़ाबनूत एवं बुन्ना-ए-फ़ाज़िली पहाड़ी क्षेत्र आदि में सभ्यता के पूर्ण विकास के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। विशेषतः यंजदर्रे की पहाड़ी पर मिट्टी की चौकोर एवं समाकार कच्ची ईंट और पलस्तर के लिए श्वेत रंग की मिट्टी का प्रयोग हुआ है। कमरों का आकार बिल्कुल छोटा तथा गोदाम भूमिगत भाग में बने कमरों में था। छत संभवतः चटाई अथवा सरकंडों से पाटी जाती थी इसी कारण समय की आँधी ने इन भवनों में से किसी को भी संपूर्ण तथा मूल रूप में नहीं रहने दिया।

2. धातु युगीन ईरान

नवपाषाण काल के समापन के उपरांत सभ्यता के विकास की दिशा में मानव ने अन्य धातुओं की अपेक्षा सबसे पहले कांस्य धातु का प्रयोग किया। किरमान का तल-इब्लीस पहाड़ी टीला कांस्य धातु का प्रथम खनिज स्रोत माना जाता है। यह टीला बुर्द सीर दर्रे में, किरमान के दक्षिण पूर्व में लगभग 72 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। सन् 1966-67 ई. में इसकी खोज सर्वप्रथम अमरीकी पुरातत्त्ववेत्ता प्रो. जोज़फ़ काल्डोल के द्वारा हुई। उपरोक्त टीले से पाँचवीं सहस्राब्दी ई. पू. के धातु युगीन अवशेष में कांस्य से बनी चिमटी, सुआ, मुहर, हाथ के कड़े एवं अँगूठी आदि प्राप्त हुए हैं। इसी टीले से मिश्रित धातु, जैसे कलई तथा सोना, चाँदी आदि से निर्मित वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। जिनसे स्पष्ट है कि इस युग को कांस्य युग न कहकर धातु युग कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त उल्लिखित युग संबंधी निम्नलिखित स्थल भी हैं : (क) काशान का सीलक टीला (द्वितीय एवं तृतीय भूखंड) (ख) निहावंद का ग्यान टीला (ग) रे का चश्मा-ए-अली (घ) हिसार टीला (ङ) किरमान का याहया टीला आदि।

3. तृतीय सहस्राब्दी ई. पू. कालीन ईरान

तृतीय सहस्राब्दी ई. पू. ईरानी पठार की मानव सभ्यता ने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास के क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की। इस युग से संबंधित तथ्य निम्नलिखित हैं :

(क) ईरान के विभिन्न क्षेत्रों में लेखन लिपि का प्रचलन (ख) मिश्र धातुओं का प्रयोग (ग) ईलामी सभ्यता का उदय एवं प्रभुत्व, और (घ) शहरी विकास आदि विषयों का संक्षिप्त विवरण।

(क) पुरालिपि–ईरान में पुरालिपि का प्रचलन चतुर्थ सहस्राब्दी ई.पू. के द्वितीय चरण में दक्षिणी मैसोपोटामिया तथा सूमेरी लेखकों ने प्रारंभ किया। लेकिन इसका उचित विकास एवं प्रसार तृतीय सहस्राब्दी ई.पू. में माना जाता है। सूमेरी मानव जाति सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नतशील तथा सभ्य सर्वप्रथम जाति स्वीकृत की गई है। इनके द्वारा आविष्कृत कीलाक्षर लिपि ने मानव समाज को शिक्षा की ओर प्रेरित किया। इस पुरालिपि की दूसरी कड़ी चित्रित कीलाक्षर लिपि थी जिसका विकास ख़ुज़िस्तान के उत्तरी मैदानी भाग तथा ज़ागरूस की वादियों के निवासियों ने किया। यह लिपि ईलामी पूर्व लिपि कहलाती है।

इस संदर्भ में भाषा वैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। प्रो. वाल्टर पिज के अनुसार तृतीय सहस्राब्दी ई. पू. में सूमेरियों द्वारा सृजित चित्रण लिपि वार्तालाप एवं पत्राचार का सर्वोत्तम माध्यम थी। इसका अनुकरण पड़ोसी ईलामियों ने भी किया। उन्होंने सूमेरियों की लिपि में कुछ परिवर्तन भी किए। कुछ समय उपरांत यह लिपि काशान (इस्फ़ाहान एवं तेहरान के मध्य) में भी प्रचलित हुई। इसी प्रकार इसका प्रसार दक्षिणी किरमान में भी मिलता है। लेकिन मोहनजोदाड़ो शहदाद, शहरे-सूख़्ते एवं याहया मलियान तथा कज़ीर पहाड़ियों में पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा किए गए शोध तथा प्राप्त चित्रण लिपि के नमूनों के आधार पर नवीन धारणा के अनुसार ईलामी पूर्व चित्रण लिपि का सृजन क्षेत्र सिंधुघाटी तथा दक्षिण-पूर्वी ईरान का क्षेत्र था। इसका प्रसार पूर्व से पश्चिम दिशा में हुआ अर्थात् ख़ुज़िस्तान एवं फ़ारस क्षेत्र इसके विकास का द्वितीय चरण है। ईरान के शूश क्षेत्र का चगामिश टीला उन प्रथम स्थलों में से है जहाँ लेखन कार्य सबसे पहले प्रारंभ हुआ।

(ख) मिश्र धातु युग–इस युग से संबंधित उल्लेखनीय स्थल दक्षिणी ईरान तथा ज़ागरूस का केंद्रीय क्षेत्र है। यहाँ के कुशल कारीगरों को धातु की वस्तुएँ बनाने में पूर्ण दक्षता प्राप्त थी। प्रो. लुई तथा वाडनबर्ग के अनुसार यहाँ की धातु निर्मित वस्तुएँ व्यापारिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण होती थीं। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस युग के विकास क्रम को तीन भागों में विभाजित किया है।

(ग) ईलामी जाति का उद्भव एवं विकास–तृतीय सहस्राब्दी ई.पू. की सबसे प्रमुख घटना ईरान में ईलामी जाति का उदय है। इनके उद्गम स्थल तथा जाति के बारे में अभी तक निश्चित मत नहीं है लेकिन प्रथम आवास स्थल

दजला नदी तथा जाबुल का शहरे-सूख़्ते क्षेत्र माना गया है। वहाँ से ये लोग केंद्रीय ज़ागरूस तथा बू-शहर की ओर बढ़े। इसके पश्चात् इन्होंने ख़ुज़िस्तान के उत्तरी मैदानी क्षेत्र, विशेषतः शूश को अपना केंद्र बनाया। ईरान में पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करने के उपरांत इन्होंने शूश को अपनी राजधानी बनाया। ईरान में लेखन कार्य की शुरुआत इलामी राज्य से ही मानी जाती है तथा इनको ही प्रथम ईरानवासी कहा जाता है।

(घ) **शहरी विकास**–ईरान में शहरी विकास अर्थात् शहरों के बसने का ऐतिहासिक प्रमाण चतुर्थ सहस्राब्दी ई. पू. के अंतिम दौर तथा तृतीय सहस्राब्दी ई.पू. के प्रारंभिक काल से मिलता है। तृतीय सहस्राब्दी ई.पू. के जिन शहरों के नाम प्रसिद्ध हैं उनमें हसन लू एवं हफ़्तवान टीला (आज़रबाईजान क्षेत्र), सीलीक एवं काशान तक हिसार, दामग़ान एवं गियान, निहावंद एवं गोदेन, कंगवार एवं गुर्गान के शाह तुरंग टीले, कज़वीन का बुईन ज़हरा कब्रिस्तान का टीला, ख़ुज़िस्तान का शूश, शहदाद एवं याहया, किरमान एवं मिलयान, फ़ारस, शहरे-सूख़्ते, जाबुल आदि उल्लेखनीय स्थल हैं।

(च) **लौह युग**–मिश्र धातु युग के समापन तथा लौह युग के प्रारंभ में ईरानी सभ्यता का चहुँमुखी विकास हुआ। इससे पूर्व लुरिस्तान की मिश्र धातु, विशेषतः कांस्य से निर्मित वस्तुओं को व्यापारिक दृष्टि से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। नये आविष्कारों के परिणामस्वरूप मिश्र धातु का स्थान लौह धातु ने ले लिया। जिसको 1500-1200, 1200-800 तथा 800-550 वर्ष ई. पू. तीन काल-क्रम में विभाजित किया गया है। चूंकि लौह की खान अन्य धातुओं की अपेक्षा अधिक हैं अतः इस धातु का प्रयोग विभिन्न प्रकार से होना आरंभ हुआ।

(छ) **भस्मवर्ण की मिट्टी का प्रयोग**–द्वितीय सहस्राब्दी ई.पू. के दूसरे चरण में भारत-ईरानी आर्य जाति के आगमन तथा लौह युग के समानांतर काल में एक प्रकार की काली मिट्टी का प्रयोग उत्तर-पूर्वी, उत्तर तथा उत्तर पश्चिमी ईरान में प्रारंभ हुआ। इससे सभ्यता के विकास में नये परिवर्तन आए। इस मिट्टी का उद्गम स्थल उत्तर-पूर्वी ईरान माना जाता है। तुरंग एवं हिसार के टीलों को पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सबसे प्रमुख स्रोत बताया है।

4. ईरान के पठारी क्षेत्रों में आर्य एवं अन्य जातियों का आगमन

भारत-ईरानी आर्यों का निश्चित उद्गम स्थल, उनके प्रवास का कारण तथा प्रवास काल अथवा युग अभी तक के प्राप्त प्रमाणों के आधार पर अस्पष्ट हैं। उपलब्ध भाषा संबंधी स्रोत अर्थात् अवेस्ता एवं वेद के आधार पर कई मत प्रचलित हैं। अधिकांशतः यह माना जाता है कि आर्यों की जो शाखा पूर्वी ईरान में आई तथा जिसके अग्रणी पारत थे वह कैस्पियन समुद्र के उत्तरी भाग को पार कर क़फ़्क़ाज तथा आज़रबाईजान में बसने वाली पश्चिमी शाखा थी। इसी शाखा का विस्तार बाद में अरूमिया नदी के पास के क्षेत्रों में हुआ। माद तथा हिख़ामंशी राजवंश इसी वर्ग से संबंधित थे। ईरानी सभ्यता एवं संस्कृति के तीव्र विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसी काल में अन्य गैर-ईरानी जातियों का आगमन गुरगान, क़फ़्क़ाज तथा अलबुर्ज़ के केंद्रीय भाग के मार्ग से होता रहा। इन जातियों में माद, क़ास्पी, कादूसी, सक्का, तपूर, गील उल्लेखनीय हैं।

5. राज्य प्रशासन व्यवस्था का प्रारंभ

विभिन्न ग़ैर-ईरानियों के आगमन से राजनीतिक वातावरण का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप प्रवासी पश्चिमी एवं पूर्वी आर्यों की शाखाओं ने ईलामियों का प्रभुत्व समाप्त कर अपने क्षेत्रों में माद एवं पारस अथवा पारत राजवंशों की स्थापना की (इनका संक्षिप्त विवरण हम इतिहास संबंधी पृष्ठों में पढ़ चुके हैं)। इन राज्यों के कुछ पुरातत्त्व संबंधी स्थलों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

हसनलू का टीला–पुरातात्त्विक शोध के अनुसार राज्य स्थापन कार्य के प्रारंभ काल से ही विभिन्न शहरों में भवन-निर्माण एवं स्थापत्य कला का प्रारंभ हुआ। 1200-900 वर्ष ई. पू. कालीन हसनलू टीले पर मिले भवन अवशेषों से पता चलता है कि भवन-निर्माण में विधिवत् रूप से तल-निर्माण शुरू हो चुका था। हसनलू टीले की चतुर्थ परत पर हुए शोध से पता चलता है कि वहाँ सामंतों एवं जनसाधारण के घर अलग-अलग थे। हसनलू के गढ़ का केंद्रीय सत्ता के रूप में प्रयोग आगामी कई वर्षों तक चला। शहर में सार्वजनिक पूजा स्थल भी विद्यमान थे।

शूश (शूशे-दानियाल)–वर्तमान ख़ुज़िस्तान में स्थित ईलामियों का यह प्रमुख केंद्र लगभग 50 हैक्टेअर में फैला हुआ था। संभवतः यह एकमात्र शहर है जो चतुर्थ सहस्राब्दी ई. पू. से छठी सदी ई. तक निरंतर आबाद रहा है। दुनिया में ऐसे बहुत कम स्थल हैं जहाँ शूश जैसे प्रमाण मिलते हैं। पुरातत्त्व दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के विभिन्न भाग उनके संस्थापकों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जैसे आक्रोपल (अरक) का बड़ा टीला, शहरे-शाही, शहरे-सनअतगरान (शिल्पियों का नगर) तथा ईलामियों का पंद्रहवाँ शहर। इसी तरह शायूर नदी के उत्तरी भाग में स्थित काख़ (महल)-ए-हिख़ामंशी तथा शहरे-इसलामी आदि प्रत्येक की अपनी विशेषताएँ हैं।

शूश के निकटवर्ती अन्य स्थानों में हफ़्त तप्पे (टीला) तथा चग़ाज़ंबील है। इसलामी शिलालेखों के लिए करानगून कूलफ़र्रेह, अशक्फ़त सलमान, क़िला-ए-तूल तथा नक़्शे-रुस्तम, जो हिख़ामंशी काल के लिए भी प्रसिद्ध है, उल्लेखनीय हैं।

माद वंश–हगमताना (हमादान) स्थल माद राज्यवंश का शक्ति केंद्र अर्थात् राजधानी था। यूनानी इतिहासकार प्लीब्यूस तथा हैरोडेट ने इसकी भव्य इमारतों एवं महत्ता का उल्लेख प्रशंसा सहित किया है। यद्यपि यहाँ अब कोई भवन-अवशेष नहीं है लेकिन उपलब्ध मिट्टी की शिलाएँ वहाँ की स्थापत्य कला का प्रमाण हैं।

नूशी जान मलायर टीला–खारे पत्थर के इस टीले पर 37 मीटर की ऊँचाई पर माद वंश कालीन एक दुर्ग है जिसमें ज़रतुश्तियों का एक अग्निपूजा स्थल तथा एक भव्य प्रासाद है। इसका निर्माण कच्ची ईंटों से हुआ है। इस स्थल पर प्रथम बार अंग्रेज़ पुरातत्त्व विज्ञानी प्रो. डेविड एस्ट्रोनाक के नेतृत्व में सन् 1967 ई. में एक दल ने उत्खनन एवं शोधकार्य किया।

कंगवार का गोदिन टीला–इस टीले के द्वितीय तल में टोरंटो विश्वविद्यालय के पुरातत्त्ववेत्ता प्रो. कायलरयांग के नेतृत्व में सन् 1967-78 ई. में उत्खनन एवं शोध के फलस्वरूप पता चला है कि यहाँ एक भव्य कमरा (हॉल) है जिसमें तीस खंभे हैं तथा एक अन्य कमरा भी खंभों सहित है जिसके आगे खुला भाग है। माद वंशकालीन यह इमारत ईंटों से बनी है।

इनके अतिरिक्त माद वंश संबंधी कई पूजा स्थल भी ईरान के विभिन्न भागों में विद्यमान हैं, जैसे महाबाद में फ़ख़्री, किरमानशाह में शीरी एवं फ़रहाद, ज़हाब के पुल पर बनी दुकानें, दाऊद तथा फ़ारस प्रांत में इस पुल पर विद्यमान दाऊद दुख़्तर की समाधि।

हिख़ामंशी वंश–आर्यों का दूसरा प्रमुख दल पारस था जिसने अरूमिया नदी के दक्षिण-पश्चिमी छोर से ईरान में प्रवेश किया। यह राजवंश हिख़ामंशी के नाम से इतिहास में अपने वैभव एवं प्रताप के लिए प्रसिद्ध है। आशूरी पंचांग में इनके क्षेत्र का उल्लेख पारसोवा के नाम से है। पारस क़बीला समय की आवश्यकताओं के अनुसार दक्षिण-पश्चिमी छोर को छोड़कर बख़्तियारी पहाड़ी शृंखला में आ बसा और वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। यह क्षेत्र उन्हीं के नाम पारस (फ़ारस) से प्रसिद्ध हुआ। इस राज्य का संस्थापक कोरूष द्वितीय था। हिख़ामंशियों का शासन काल अनेक रूप से स्वर्ण युग था। प्रथम बार इस राज्य काल में सिक्कों का चलन हुआ जो आर्थिक विकास की ओर एक महत्त्वपूर्ण क़दम था। इसके अतिरिक्त नहरों का निर्माण, सड़कों का निर्माण, डाक सेवा, सुरक्षा दलों का गठन आदि सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित राज्य स्थापन के लिए किए गए महत्त्वपूर्ण कार्य थे। राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त होने तथा राज्य विस्तार के फलस्वरूप इनके काल में चार शीतकालीन एवं ग्रीष्म कालीन सत्ता केंद्रों का निर्माण किया गया। इनमें से मुख्य हमादान, बाबुल, शूश तथा तख़्ते-जमशीद (पर्सीपोलिस) हैं। लेकिन इन सबमें पासारगाद, तख़्ते-जमशीद, शूश, बीस्तून, सुलेमान मस्जिद तथा नक़्शे-रुस्तम दर्शनीय तथा उल्लेखनीय हैं।

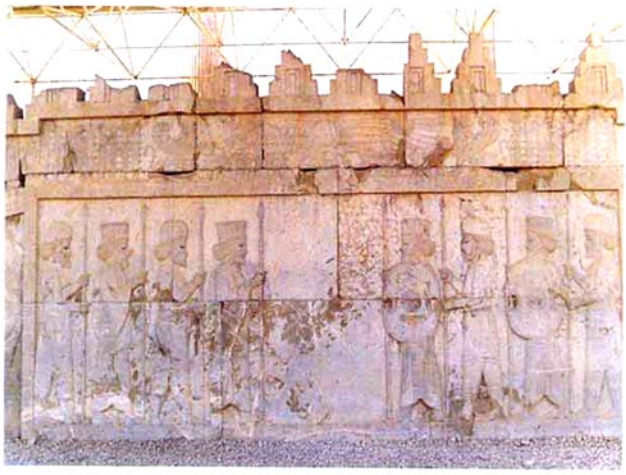

तख़्ते-जमशीद में भारतीय दूतों का आगमन (हिख़ामंशी काल–चौथी सदी ई.पू.)

पासारगाद–यह हिख़ामंशियों की प्रथम राजधानी थी। यह स्थान शीराज़ से 140 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। तीन ओर पहाड़ियों से घिरा यह स्थान सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण रहा होगा। हिख़ामंशी काल के संस्थापक कोरूष द्वितीय की समाधि, विशेष प्रासाद, दरबार, महल, पूर्वी महल तथा पंख युक्त मानव स्मारक आज भी यहाँ विद्यमान हैं।

तख़्ते-जमशीद (जमशेद)–रहमत पहाड़ी की गोद में स्थित, शीराज़ शहर के उत्तर में 60 कि. मी. की दूरी पर,

हिख़ामंशी काल के गौरव एवं प्रभुत्व की गाथा कहता हुआ यह खण्डहर, जो कभी वैभवशाली प्रासाद रहा होगा, वास्तव में दर्शनीय है। इसका निर्माण दारा (दारयूश) प्रथम के काल में आरंभ हुआ तथा आगामी हिख़ामंशी शाहों ने इसका निरंतर विकास किया। सिकंदर ने इस भव्य इमारत को जलाकर राख कर दिया था। परंतु आज भी अपने प्रतापी शाहों की कहानी कहने के लिए यह भवन अपने स्थान पर विद्यमान है। इनमें दरवाज़ा-ए-मिलल, एक अधूरा द्वार, शतस्तंभ महल, आपादान महल, तचर महल, अर्दशीर द्वितीय का महल, अंतरंग महल, कोष निधि महल, सुरक्षा दीवार, केंद्रीय महल, प्रवेश-द्वार तक पहुँचने वाली सीढ़ियाँ, हिख़ामंशीकाल की कुछ समाधियाँ, इसी काल से संबंधित शिलालेख, चौखंभा भवन, दक्षिणी भाग में पारसा शहर के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। इनमें सबसे उल्लेखनीय दरवाज़ा-ए-मिलल (अंतर्राष्ट्रीय द्वार) है जिसपर अधीनस्थ राज्यों के प्रतिनिधियों को उनके ही परिवेश में भेंट एवं उपहार के साथ हिख़ामंशी दरबार में प्रवेश करते हुए दिखाया गया है। प्रो. आर्नस्ट हर्टस्फ़ील्ड तथा प्रो. एरिक स्मिथ, शिकागो विश्वविद्यालय, के निरंतर शोध एवं उत्खनन कार्यों से इस स्थल की महत्ता के संबंध में पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। प्रसिद्ध भाषाविद् जॉर्ज कामरून ने उत्खनन कार्य में मिले शिलालेखों को पढ़ने का कठिन कार्य किया है। द्वितीय महायुद्ध के उपरांत किए गए उत्खनन एवं शोध कार्यों में ईरानी पुरातत्त्ववेत्ताओं में डा. अली सामी तथा अकबर मुख़्तार तजवीदी के नाम भी स्मरणीय हैं।

नक़्शे-रुस्तम–तख़्ते-जमशीद से पाँच कि.मी. की दूरी पर स्थित हुसैन पहाड़ के मध्य बने हिख़ामंशी शाह दारयूश प्रथम, ख़शायारशा अर्दशीर प्रथम और दारयूश द्वितीय की समाधियाँ तथा ज़रतुश्ती धर्मानुयायिओं का मुख्य अग्नि पूजा स्थल एवं सासानी काल के स्मारक चिह्न नक़्शे-रुस्तम के प्रमुख भाग हैं। दारयूश प्रथम की समाधि का शिलालेख तीन भाषाओं–प्राचीन फ़ारसी, ईलामी तथा बाबुली में लिखा हुआ है।

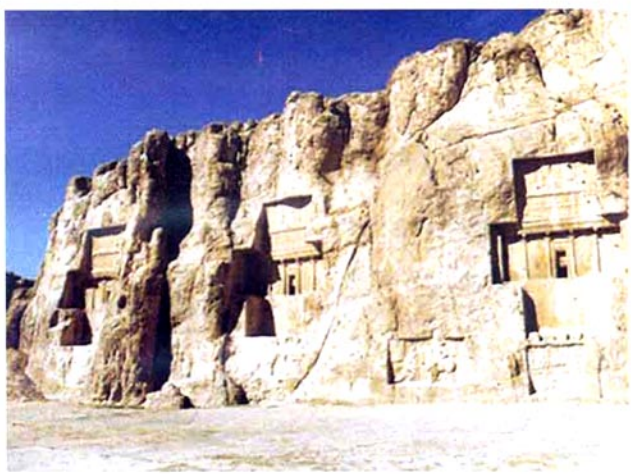

नक़्शे-रुस्तम

बीस्तून–शूश एवं सुलेमान मस्जिद के महत्त्वपूर्ण हिख़ामंशी स्मारकों के अतिरिक्त बीस्तून विशेष रूप से उल्लेखनीय है। किरमान शाह से 40 कि.मी. की दूरी पर स्थित यह स्थल पाषाणयुग से इसलामी युग तक के स्मारक चिह्नों की निधि है। हिख़ामंशी शाह दारयूश प्रथम का एक उत्कीर्ण चित्र तथा शिलालेख प्राचीन फ़ारसी, बाबुली तथा ईलामी भाषा में विद्यमान हैं। उत्कीर्ण चित्र में शाह के अतिरिक्त नौ बाग़ी सरदार, जिनका नेता गऊमाताए (झूठा बर्दिया मुग़ पुजारी) था, भी दर्शाए गए हैं। शिलालेख का बीज वाचन अंग्रेज़ भाषाविद् हेनरी राविलसन ने किया है।

सलूकी वंश–320 वर्ष ई. पू. में हिख़ामंशी राज्य का उन्मूलन करने के उपरांत सिकंदर के उत्तराधिकारी सैल्युकस तथा उसके साथी दीर्घकाल तक ईरान पर अपना प्रभुत्व स्थिर न रख पाए। उनका वर्चस्व 64 वर्ष ई. पू. तक ईरान, पश्चिमी एशिया पर बना रहा। उनके शासन काल संबंधी स्मारकों में निहावंद शहर का आराधना स्थल, लाओडिसा, जहाँ कुछ यूनानी देवी-देवताओं की कांस्य मूर्तियाँ भी मिली हैं तथा एरीकूस तृतीय का शिलालेख, पुरातत्त्व वैज्ञानिकों के लिए शोध का विषय बने हुए हैं। इसी प्रकार उस काल से संबंधित ख़ोरहा का आराधना स्थल भी उल्लेखनीय है।

अशकानी (पारत) वंश–आर्यों की पूर्वी टोली जो सक्काई क़बीलों की शाखा थी ईरान की सीमा पर ही बस गई। इसका राज्यकाल 247 वर्ष ई. पू. से सन् 227 ई. तक रहा। इनकी प्रथम राजधानी वर्तमान तुर्कमेनिस्तान के शहर नसा-मर्व को माना गया है। बाद के शासकों ने हकातम पोलिस अर्थात् दामग़ान के निकट सौ द्वार के शहर को अपनी राजधानी बनाया। इसके अतिरिक्त अशकानियों का प्रसिद्ध आराधना स्थल अनाहिता, किरमान शाह से 90 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। ख़ाजा ज़ाबुल की पहाड़ी पर स्थित ईंटों से निर्मित भव्य स्मारक भी इसी वंश से संबंधित है। वास्तव में यह स्मारक अशकानी, सासानी बुद्ध मत तथा पूर्वी ईरान के मानवी मत की मिलीजुली सांस्कृतिक धरोहर है। पारत अथवा अशकानियों की अन्य स्मृतियों में हमादान का संगे-शेर गोरिस्तान (क़ब्रिस्तान), शूस्तर में अलयमाई की समाधि, अर्दबील में स्थित गिर्मी समाधिस्थल तथा शूश के प्राचीन स्थलों में पारत काल संबंधी तल उल्लेखनीय हैं।

सासानी वंश–पाँच शताब्दियों तक सत्ता में बने रहने वाले अशकानी वंश का विनाश उत्तरी ईरान की जातियों के उत्थान का द्योतक था। अशकानी शासक अर्दवान पंचम (सन् 213-227 ई.) को परास्त कर सासानी सरदार अर्दशीर प्रथम ने सन् 227 ई. में अपने पूर्वज एवं पारस के प्रमुख अतिशकदा (अग्नि मंदिर) इस्तेख़र के प्रधान धर्माचार्य सासान के नाम पर सासानी वंश की स्थापना की। सासानी वंश का अंतिम शासक यज़्दगुर्द तृतीय था जिसे परास्त कर अरब-इसलामी सेनाओं ने ईरान पर क़ब्जा कर इसलाम धर्म का प्रचार किया।

सासानी शासन काल की स्थापत्य कला ईरानी सभ्यता की प्राचीनता एवं उत्कृष्टता का दर्पण है। इसमें शुद्ध ईरानी तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य सभ्यताओं के विभिन्न तत्त्व भी दिखाई देते हैं। धातु-निर्मित औज़ार, मिट्टी तथा काँच के बर्तन एवं पात्र, ऊनी कपड़े तथा वस्त्र, क़तानी (लिनन), रेशम का उत्पादन, गच्चीकारी तथा टाइल का निर्माण कार्य में इस्तेमाल एवं अन्य औद्योगिक कार्य सासानी वंश से ईरान में मुख्य रूप से प्रचलित हुए। स्वर्ण एवं चांदी की तात्कालिक मुद्राएँ ईरान के उन्नतशील एवं विकसित आर्थिक ढाँचे के इतिहास को सत्यापित करती हैं। सासानी वंश का राज्य विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। इसके अवशेष वैभव एवं प्रताप की गाथा कहने के लिए ईरान तथा पड़ोसी राज्यों में आज भी विद्यमान हैं। इनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

मदायन शहर के अवशेष–सासानी शासक अर्दशीर प्रथम ने अपनी राजधानी, फ़िरोज़ाबाद की बजाय दजला नदी के किनारे मदायन शहर में बसाई। यह शहर अशकानियों का भी राज्य केंद्र था। सासानी कारीगरों ने यहाँ भव्य एवं सुंदर महल का निर्माण किया। इस महल के मुख्य भाग में 37 मी. ऊँची तथा 43 मी. चौड़ी एक ताक़ बनाई गई जो अपने आप में एक दर्शनीय एवं अजूबा-ए-वक़्त थी। इसका कुछ भाग आज भी विद्यमान है। मशहूर कवि ख़ाकानी

ने इस शहर के भव्य एवं गौरवमय इतिहास को अपने हृदय विदारक क़सीदे में चित्रित किया है।

फ़िरोज़ाबाद (फ़ारस)–प्रमुख आराधनालय इस्तेख़र के उपरांत सासानी वंश की प्रथम राजधानी फ़िरोज़ाबाद में स्थापित की गई। इस शहर के अन्य सासानी स्मारकों में अनाहिता का आराधना स्थल तथा वालरियन प्रासाद मुख्य हैं। प्राचीन शहर से 400 मी. की दूरी पर चौगान दर्रे से शापूर नदी गुज़रती है। वहाँ पहाड़ी पर सासानी शासक शापूर की रोम के शासक वालरियन पर विजय के उत्कीर्ण चित्र बने हैं। फ़िरोज़ाबाद के क़िले में विद्यमान ईंट से निर्मित लाट जो मीले-आतिश के नाम से प्रसिद्ध है तथा यहाँ के गुंबद एवं मेहराब ईरान की स्थापत्य कला के अनमोल उदाहरण हैं।

बीशापूर (काज़रून) का प्राचीन महानगर : सासानी शासक शापूर प्रथम की राजधानी का यह महानगर रोम-नगरों की नगर योजना के अनुकरण स्वरूप सन् 266 ई. में निर्मित हुआ। इसके निर्माण कार्य में रोमन स्थापत्यविदों का प्रभाव दिखाई देता है। बीशापूर के उत्तर-पूर्वी भाग में शापूर प्रथम का आदमक़द मुजस्मा (मूर्ति) प्राप्त हुआ है जो सासानी उत्कीर्ण कला का श्रेष्ठ उदाहरण है।

ऐतिहासिक शहर इस्तेख़र–भूमिगत हो गया यह शहर तख़्ते-जमशीद से लगभग 10 कि.मी. की दूरी पर पुलवार नदी के पास स्थित है। यह हिख़ामंशी-सासानी तथा इसलामी सभ्यता का संगम रहा है। हिख़ामंशी काल में बसा यह शहर सासानी वंश के पूर्वज तथा वहाँ के प्रमुख आतिशकदे 'आज़रबान' के प्रधान धर्माचार्य सासान का जन्म स्थल था। अनेक ऐतिहासिक स्थल, जिन्हें समय की आँधी ने धूल में मिला दिया, खेद है कि उनमें यह प्राचीन शहर भी है।

तख़्ते-सुलेमान–पश्चिमी आज़रबाईजान के तकाब शहर के 40 कि.मी. के उत्तर-पूर्वी भाग में बसा यह स्थल सासानियों के स्मारकों का महत्त्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ तीन बड़े आतिशकदे (अग्नि मंदिर), भव्य प्रासाद के अवशेष तथा एक सुंदर प्राकृतिक झरना है। इस स्थल का उत्खनन कार्य जर्मन पुरातत्त्ववेत्ता प्रो. रोडोल्फ़ नोमान एवं डॉ. डीटरिश होम के द्वारा संपन्न हुआ।

ताक़े-बूस्तान–किरमानशाह से 6 कि. मी. के फासले पर मर्व पहाड़ की घाटी में एक झरना है जिसका स्रोत उसी पहाड़ के मध्य है। यहाँ दो ताक़ पहाड़ की घाटी में सासानी काल में निर्मित की गई। इन ताक़ों पर की गई सुंदर उत्कीर्ण चित्रकारी उस काल के कारीगरों की दक्षता का बेहतरीन नमूना है। इस चित्र में अर्दशीर द्वितीय की ताजपोशी दर्शाई गई है जिसे आहूरमज़्दा सल्तनत का हार प्रदान कर रहे हैं। प्रथम बड़ी ताक़ पर ख़ुसरो परवेज़ का घोड़े पर सवार एक सुंदर उत्कीर्ण चित्र है। ताक़ के दूसरे दो भागों में आखेट का दृश्य है। छोटी ताक़ पर शापूर द्वितीय तथा तृतीय के उत्कीर्ण चित्र हैं।

उपरोक्त स्थलों के अतिरिक्त सासानी वंश कालीन दक्ष शिल्पियों के हस्त कौशल के नमूने कस्रे शीरीन, हाजी आबाद बंदरावास, इस्फ़ाहान में पुले-शहरिस्तान और महल्ला जी, नक़्शे-रुस्तम तथा तंगे-तंगाव, किरमानशाह शहर में दारा बगर्द, फ़ारस में नक़्शे-रजब, तख़्ते-जमशीद आदि महत्त्वपूर्ण स्मारक दर्शनीय हैं। इसी प्रकार सासानी काल के शिलालेख अनेक स्थलों पर पाए गए हैं। इनमें मुख्यतः नक़्शे-रुस्तम में शापूर प्रथम का शिलालेख, ताक़े-बूस्तान,

हाजी आबाद फ़ारस, नक़्शे-रजब, तख़्ते-जमशीद में मक़सूदाबाद पहाड़ी पर उत्कीर्ण पहलवी शिलालेख आदि पुरातत्त्ववेत्ताओं और भाषाविदों के लिए आकर्षण केंद्र रहे हैं।

इसलामी काल

इसलामी काल की वास्तुकला वास्तव में सासानियों की स्थापत्य कला की अवस्थिति है। वस्तुतः इसलाम पूर्व स्थापत्य कला नव-इसलामधर्मी ईरानी शिल्पकारों के द्वारा ईरान तथा आस-पास के क्षेत्रों में जारी रही। सासानी वास्तुकला के विशिष्ट तत्त्व जैसे, गुंबद, बरामदा तथा उसके आगे आँगन इसलामी काल में यथावत रहे। सामरा स्थल पर इसलामी काल में निर्मित प्रथम मस्जिद (मस्जिद शब्द अरबी मूल का नहीं अपितु मसगत शब्द से है। अरबी के शब्द सजदा से इसका उद्गम कहना ग़लत है। वर्णन के लिए देखें : लुगतनामा-ए-दहख़ुदा) की मीनार का निर्माण फ़िरोज़ाबाद शहर की आतिशे-बुर्ज की सासानी वास्तु शैली पर किया गया है।

मशहद स्थित इमाम रिज़ा (अ) का रौज़ा

इसलामी काल की शहर निर्माण तथा शहरों को आबाद करने की योजना भी सासानी काल की नगर योजना के समरूप है। बग़दाद (बाग़े-दाद अर्थात् न्याय नगर) शहर की योजना जो ख़लीफ़ा मंसूर दवानिक़ी के काल में शुरू हुई थी, सासानी काल की शहर योजना पर आधारित है। इसी प्रकार ख़लीफ़ा हारून रशीद (सन् 170-193 हि.) के काल में बसे शहर रक्का के मुख्य द्वार के तोरण तथा मेहराबों का जोड़-स्थल सासानियों की राजधानी मदायन के ताक़े-किस्रा की याद दिलाता है।

इसलामी काल के प्रारंभ की अधिकतर इमारतें शेष नहीं हैं। अगर कुछ शेष हैं तो उनमें समयानुसार कई परिवर्तन हो चुके हैं, जैसे :

1. क़ज़वीन की जामा मस्जिद जो ख़लीफ़ा हारुन रशीद के काल में एक आतिशकदे को परिवर्तित करके बनाई गई।
2. शूश शहर की प्राचीन मस्जिद जिसका अब कुछ अंश ही शेष है।
3. इस्फ़ाहान की जामा मस्जिद जो अब्बासी ख़लीफ़ा मंसूर (सन् 136-157 हि.) के काल में निर्मित हुई तथा बाद में उसमें कई परिवर्तन किए गए।
4. अर्दबील की जुमआ मस्जिद जिसका अस्तित्व बिल्कुल समाप्त हो चुका है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अवशेष हैं जिनमें माज़िंदरान के पहाड़ सवाद की दो बुर्जियाँ उल्लेखनीय हैं। संभवतः यह दोनों तबरिस्तान के हाकिमों के आदेश पर बनाई गई। इन पर कूफ़ी तथा सासानी पहलवी लिपि में शिलालेख विद्यमान हैं। इसी प्रकार दामग़ान की मस्जिदे-तारीख़ाना ईरान की ऐतिहासिक मस्जिदों में से है। बिना गुंबद की इस मस्जिद में चार शबिस्तान (मस्जिद का रात्रि प्रार्थना स्थल) हैं जिनकी अंडाकार क़ौस (वक्राकार घुमाव, मेहराब) तथा ईंट के बने पलस्तर युक्त गोलाकार खंभे सासानी वास्तुकला की याद दिलाते हैं। चौथी सदी के आरंभिक काल में इसी शैली पर बनी नाईन शहर की मस्जिद भी सासानी काल के आतिशकदों की वास्तुकला का अनुसरण है।

इसी प्रकार बुख़ारा (वर्तमान उजबेकिस्तान) में विद्यमान सासानी शासक अमीर इसमाइल सामानी का मक़बरा भी सासानी वास्तुकला की यथावत स्थिति का उदाहरण है।

संक्षेप में, ईरान में इसलामी शासन की स्थापना के उपरांत भी, विशेषतः सलजूक़ी वंश तक, सासानी वास्तुकला का ही वर्चस्व बना रहा।

सलजूक़ी काल से क़ाजारी काल तक विभिन्न काल में अन्य वास्तुकलाओं के तत्त्व ईरानी (सासानी) वास्तुकला में सम्मिलित हो गए। लेकिन आगामी शताब्दियों में निर्मित अधिकांश भवनों में गुंबद, मीनार, मेहराब, ताक़, क़ौस, मस्जिद का आँगन अथवा खुला भाग, शबिस्तान आदि का निर्माण शुद्ध ईरानी वास्तुकला की शैली पर ही किया गया। विभिन्न देशों, विशेषतः बृहत् हिंदुस्तान में भी इसका चलन रहा। प्रारंभिक इसलामी काल के प्रसिद्ध स्थल जहाँ पुरातत्त्ववेत्ताओं ने शोध कार्य किए, निम्नलिखित हैं :

(1) **शहर हरीरा तथा कीश द्वीप**–कीश द्वीप के उत्तर में एक शहर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इतिहासकारों के

अनुसार यह शहर और यहाँ के बंदरगाह नौवीं सदी हि. तक विद्यमान थे। राजनीतिक कारणों से इस शहर एवं बंदरगाह को खाली करवा लिया गया था। डॉ. महमूद मूसवी के उत्खनन कार्य से पता चला है कि यहाँ एक विशाल दुर्ग तथा सामंतों के भव्य भवन थे। साधारण लोगों, विशेषतः कारीगरों का यहाँ एक बड़ा केंद्र था।

(2) **प्राचीन नीशापूर**–ख़ुरासान का यह प्रसिद्ध शहर जिसे सासानी काल का महानगर कहते हैं, कई बार बसा तथा उजड़ा है। महान् साहित्यकारों एवं कवियों, जैसे अत्तार, ख़य्याम का यह शहर मुग़लों के आक्रमणों का मुख्य निशाना बना। कहा जाता है कि यहाँ इतना नरसंहार हुआ कि शायद ही कोई जीवित बचा हो। दासों तथा अश्वों की सबसे बड़ी मंडी इसी शहर में थी। यहाँ किए गए उत्खनन कार्यों से इस शहर की महत्ता एवं विशालता का अनुमान होता है।

(3) **सुलतानिया शहर**–इलख़ानी मुग़ल शासक सुलतान मुहम्मद ख़ुदाबंदा उर्फ़ उलजायतो की राजधानी सुलतानिया ज़ागरूस पहाड़ी शृंखला की गोद में बसी थी। यह शहर वर्तमान में क़ज़वीन से ज़ंजान मार्ग पर स्थित है। यहाँ इलख़ानियों की भव्य गुंबदाकार इमारत जिसकी ऊँचाई 50 मी. है, शायद ईरान की इसलामी इमारतों में सबसे ऊँची है। इसे उपरोक्त शासक के काल में ही बनवाया गया था। इलख़ानी अश्वारोहियों के लिए इसके सम्मुख विशाल मैदान जो बर्फ़ से ढकी पहाड़ियों तक फैला हुआ है, व्यायामशाला के रूप में प्रयोग किया जाता था। यहां हुए उत्खनन कार्यों से शहर के तात्कालिक आवासीय मकानों के प्रारूप एवं योजना का अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्य महत्त्वपूर्ण स्मारकों में बुर्जान के प्राचीन शहर के अवशेष, शेख़ सफ़ीउद्दीन अर्दबीली का मक़बरा, बस्ताम शाहरूद में स्थित प्रसिद्ध सूफ़ी बायजीद बस्तामी की ख़ानकाह, अलीशाह तबरीज़ी का दुर्ग, रे शहर का क़िला-ए-गबरी तथा ख़ुरासान के ज़ोज़न शहर की प्राचीन जामा मस्जिद वर्णनीय हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कई स्थल हैं जहाँ पुरातत्त्ववेत्ताओं ने पिछली शताब्दी में उत्खनन एवं शोध कार्य किए हैं जिनसे ईरानी सभ्यता एवं संस्कृति की महत्ता का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है।

वर्तमान काल में एक विशेष विभाग साज़माने-मीरासे-फ़रहंगीए-किश्वर (राष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर संगठन) समस्त पुरातत्त्व संबंधी कार्यों का केंद्र है। यह विभाग विजारते-फ़रहंगे-इरशादे-इसलामी (सांस्कृतिक एवं इसलामी मार्गदर्शन मंत्रालय) का अंग है।

फ़ारसी साहित्य का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के अन्य अध्यायों में ईरान के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के विभिन्न पक्षों का परिचय कराया जा चुका है। किसी भी जाति, वर्ग अथवा देश की संस्कृति का वास्तविक दर्पण उसका साहित्य है। अतः इस अपरिहार्य विषय के संबंध में परिचयात्मक विवरण लिखने से पूर्व कुछ तथ्यों की जानकारी आवश्यक है :

(1) वर्तमान फ़ारसी साहित्य एवं भाषा अधिकांशतः इसलाम-पूर्व एवं इसलामोत्तर कालीन भाषा तथा साहित्य का मिश्रित रूप है क्योंकि किसी भी जाति एवं वर्ग की संस्कृति, सभ्यता एवं रस्मो-रिवाज का स्वतंत्र अस्तित्व के साथ-साथ धर्म से संबंध अवश्य होता है।

(2) इसलाम-पूर्व कालीन फ़ारसी साहित्य का लेखन काल 700 वर्ष ई. पू. से सन् 651 ई. तक स्वीकार किया गया है। इस अंतराल में मुख्यतः माद, हिख़ामंशी, अशकानी तथा सासानी राजवंशों का शासन रहा जिनके संबंध में विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है।

(3) सासानी राजवंश के पूर्व ईरान में दरबार तथा राजकीय काम-काज की भाषा प्राचीन फ़ारसी थी तथा धार्मिक भाषा अवेस्ताई कहलाती थी। कुछ क्षेत्रों में आरामी भाषा का प्रयोग भी किया जाता था। इस युग के प्रमाणिक स्रोतों का आधार कीलाक्षर शैली में लिखित उपलब्ध शिलालेख हैं।

सासानी युग में अवेस्ता की टीका 'ज़ंद' लिखी गई तथा उसकी पहलवी भाषा में टीका 'पाज़ंद' कहलाई। स्मरण रहे कि सासानी काल में ज़रतुश्त धर्म का प्रचार एवं प्रसार बहुत हुआ। 'बुंदहिश्न' तथा 'दास्ताने दीन किरत' इसलामोत्तर काल में रची गई पारसियों की पवित्र पुस्तकें हैं। अवेस्ता में लिखित गाथाएं भी इसी काल से संबंधित हैं।

(4) यज़्दगुर्द तृतीय (सन् 642 ई.) के उपरांत इसलामी शिक्षा, साहित्य एवं भाषा के प्रभाव ने ईरान के साहित्य में आंदोलनकारी परिवर्तन किए। प्राचीन फ़ारसी, अवेस्ता के उपरांत प्रचलित हुई। सासानी कालीन पहलवी, अरबी लिपि में लिखी जाने लगी। अरबी शब्दों एवं भावों का विपुल भंडार ईरान की विभिन्न भाषाओं एवं उपभाषाओं में रच-बस गया। प्रथम दो सौ वर्षों तक बर्तनी परिवर्तन एवं अनुवाद प्रक्रिया का बोलबाला रहा।

(5) यज़्दगुर्द तृतीय के काल के उपरांत राजनीतिक प्रभाव के कारण परिस्थितियां बदलीं तथा उसका प्रभाव

भाषा एवं साहित्य पर भी हुआ। उमय्यद वंश के उन्मूलन उपरांत अब्बासी ख़िलाफ़त की स्थापना हुई। अब्बासी ख़लीफ़ाओं को सिंहासनारूढ़ कराने में ईरानियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप प्रारंभिक अब्बासी ख़लीफ़ाओं के मंत्री ईरानी रहे। इनमें तत्कालीन अफ़ग़ानिस्तान के बरमकी वंश (बरमक=प्रमुख) के मंत्री अपनी विद्वत्ता एवं कूटनीति के लिए प्रसिद्ध रहे। अब्बासियों के छठे ख़लीफ़ा मामून के अतिरिक्त अग्रणी ख़लीफ़ाओं ने पुनः ईरान-विरोधी कार्य किए जिसे ईरानियों की स्वतंत्रता प्रिय प्रवृत्ति ने स्वीकार न कर स्वयं को अरबों के चंगुल से स्वतंत्र कराने के लिए युद्ध स्तर पर कार्य शुरू किए। ईरानी मूल के शासकों में प्रथम राज्य स्थापन का गौरव सामानियों को प्राप्त हुआ। वर्तमान फ़ारसी साहित्य का प्रारंभ भी इसी काल से माना जाता है।

सामानी काल

सामानी काल तक फ़ारसी भाषा की लिपि पहलवी के स्थान पर अरबी हो चुकी थी। अरबी भाषा के विद्वानों ने यूनानी, लैटिन, आरामी आदि भाषाओं के साहित्य, विशेषतः दर्शन, गणित (बीज गणित) तथा चिकित्सा विज्ञान की अनेक अमूल्य कृतियों के अनुवाद अरबी भाषा में किए। इसलिए इन भाषाओं के शब्द भी अरबी भाषा के माध्यम से फ़ारसी भाषा में आ गए। जैसे यूनानी भाषा के दीनार, फ़िंजान, प्याला, संदल, अल्मास; आरामी भाषा के जज़िया, मस्जिद, ताबूत; इसी प्रकार आबनूस, तिलिस्म, कीमिया, क़ानून आदि ग़ैर-अरबी शब्द हैं जो अरबी भाषा के माध्यम से फ़ारसी भाषा में आए। संक्षेप में, सामानी काल से ही फ़ारसी में अरबी तथा अन्य भाषाओं का वर्चस्व शीघ्रता से विकसित हुआ।

सामानियों की राजधानी बुख़ारा इसलामोत्तर काल में फ़ारसी भाषा एवं साहित्य का सबसे बड़ा केंद्र थी लेकिन सामानी युग के साहित्यकारों की कोई विश्वस्त सूची अभी तक तैयार नहीं की गई है। विभिन्न साहित्य इतिहास लेखकों के मतानुसार सामान्यतः साहित्य पद्य में ही रहा होगा क्योंकि ईरान में पद्य का प्रचलन गद्य की तुलना में अधिक रहा है। द्वितीय, ईरान संगीत एवं ललित कलाओं का मुख्य केंद्र रहा और संगीत एवं काव्य में निहित समन्वय और सामंजस्य सदैव काव्य रचना को प्रेरित करता रहा है। प्रारंभिक कवियों में हकीम अबु हिफ़्स सुग़दी का नाम लिया जाता है। वह प्रथम हिजरी अथवा सातवीं सदी ईस्वी में 'शाहरूद' वाद्य बजाने वाला प्रसिद्ध कवि था। इसी प्रकार सामानी पूर्व ताहिरी काल से संबंधित कवयित्री हंज़ला बादग़ैसी के भी कुछ फ़ारसी शेर मिलते हैं। सामानी काल के प्रमुख कवि अबुशकूर बल्ख़ी, अबुल हसन शहदी बल्ख़ी, अम्मारा मरवज़ी, कसाई मरवज़ी तथा अबु अब्दुल्ला जाफ़र बिन मुहम्मद रूदकी हैं। सभी साहित्य आलोचकों ने रूदकी को प्रथम सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में स्वीकार किया है। रूदकी, जिसका संबंध रूदक गाँव, रूद वाद्य तथा रूदक नदी से जोड़ा जाता है, जन्म से सूरदास था। परंतु अपनी काव्य प्रतिभा के कारण सामानी शासक नसर बिन अहमद का चहेता कवि बना। वह चंग तथा रूद वाद्य बजाने में प्रवीण था। उसके काव्य में सरलता और लय की प्रधानता है। कहा जाता है कि नसर बिन अहमद एक बार ऐशो-मस्ती के लिए बुख़ारा से बाहर एक अन्य स्थान पर दीर्घकाल तक रुक गया तथा सारा राजकीय काम-काज ठप्प हो गया। दरबारियों के आग्रह पर रूदकी ने उस ऐश्वर्य स्थल पर जाकर एक क़सीदा बादशाह के सामने पढ़ा और उसमें बुख़ारा की प्रशंसा की। उस क़सीदे से प्रभावित होकर बादशाह नंगे पैर सीधा बुख़ारा की ओर रवाना हुआ। इस क़सीदे का प्रथम शेर है—

बूए-जूए-मूलियान आयद हमी

यादे-यारे-मेहरबान आयद हमी

(मूलियान नहर की सुगंध आ रही है

तथा कृपालु मित्र की याद भी निरंतर आ रही है)

रूदकी की साहित्यिक कृतियों में आख्यानक काव्य 'वामिक़-ओ-अज़रा' भी है जिसको मूलतः पहलवी में रचा गया था। रूदकी ने ग़ज़लें भी लिखीं जो सरल एवं सुगम शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं।

दक़ीक़ी तूसी को उल्लेखित काल का अंतिम महत्त्वपूर्ण कवि कहा जाता है। प्राचीन ईरान की प्रथानुसार फ़ारसी में शाहनामा के लेखन का श्रेय इसी कवि को जाता है। महाकाव्य लेखन के अतिरिक्त दक़ीक़ी ने प्रथम चग़ानी शासकों तथा उनके उपरांत सामानियों की प्रशंसा में क़सीदे लिखे। उसने ग़ज़लें भी कलमबद्ध कीं। अल्पायु में ही उसके दास ने दक़ीक़ी की हत्या कर दी। फ़ारसी साहित्य के प्रथम चरण में दक़ीक़ी का काव्य परिपक्वता एवं बुलंद ख़यालों का प्रतीक है। उसके द्वारा रचित शाहनामे का उल्लेख फ़िरदौसी ने अपने शाहनामे में किया है। सामानी काल की मुख्य पुस्तकें (गद्य) अरबी भाषा से अनूदित हैं। इनमें तारीख़े-तबरी, शाहनामे का प्राक्कथन, पवित्र क़ुरान के फ़ारसी अनुवाद एवं टीका आदि प्रमुख हैं। इसी काल में ईरान में अरबी भाषा में साहित्य लेखन का प्रचलन हुआ। इनमें इब्ने-क़ुतिब्बा, हमज़ा इस्फ़ाहानी, मुहम्मद जरीर तबरी, इब्ने-फ़क़ीह हमादानी आदि उल्लेखनीय हैं। मंसूर बिन नूह सामानी शासक के आदेश पर तारीख़े-तबरी के अनुवाद एवं टीका भी लिखे गए। इसी काल में (सन् 372 हि.) भूगोल विज्ञान संबंधी विषय पर लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तकों में अजायबुल बुल्दान अथवा अजायबुल वर्गी और अल बहर तथा हुदूदुल-आलसरमिन अलमशरिक़ो-अल-मग़रिब भी हैं। औषधिशास्त्र पर रचित पुस्तक किताबुल-अबनिया-अन हक़ायक़ुल-अदविया मंसूर मुवफ़्फ़िक़ हरवी की रचना है।

ग़ज़नवी काल

ग़ज़नवियों का युग फ़ारसी साहित्य में अनेक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। ग़ज़नवी दरबार के आकर्षण ने सामानियों के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक केंद्र बुख़ारा को आभाहीन कर दिया था। ग़ज़नवी शासकों में महमूद ग़ज़नवी का दरबार फ़ारसी के महान् कवियों (अधिकांश क़सीदा गो) जैसे उन्सरी, फ़रुख़ी एवं असुजदी आदि के अतिरिक्त चार सौ से अधिक प्रमुख कवियों एवं लेखकों का आश्रय स्थल था। यही दरबार था जहाँ फ़िरदौसी की सर्वप्रथम आवभगत हुई लेकिन दरबारी एवं साहित्यिक षड्यंत्र ने उसे वहाँ से फ़रार होने पर बाध्य कर दिया। परिणामस्वरूप उसने महमूद की हिजो (हजव अर्थात् भर्त्सना) में भी शेर कहे। महमूद ग़ज़नवी को जब अपनी भूल का बोध हुआ और उसने वचन के अनुसार सोने की अशर्फ़ियाँ फ़िरदौसी के शहर तूस भेजीं तो फ़िरदौसी का जनाज़ा निकल रहा था। इस त्रासित महान् ईरानी कवि ने अपने महाकाव्य शाहनामे में ईरान के संपूर्ण इतिहास एवं संस्कृति को साठ हज़ार शेरों में कविताबद्ध कर अनूठा एवं अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया जिसके कारण वह अमर हुआ :

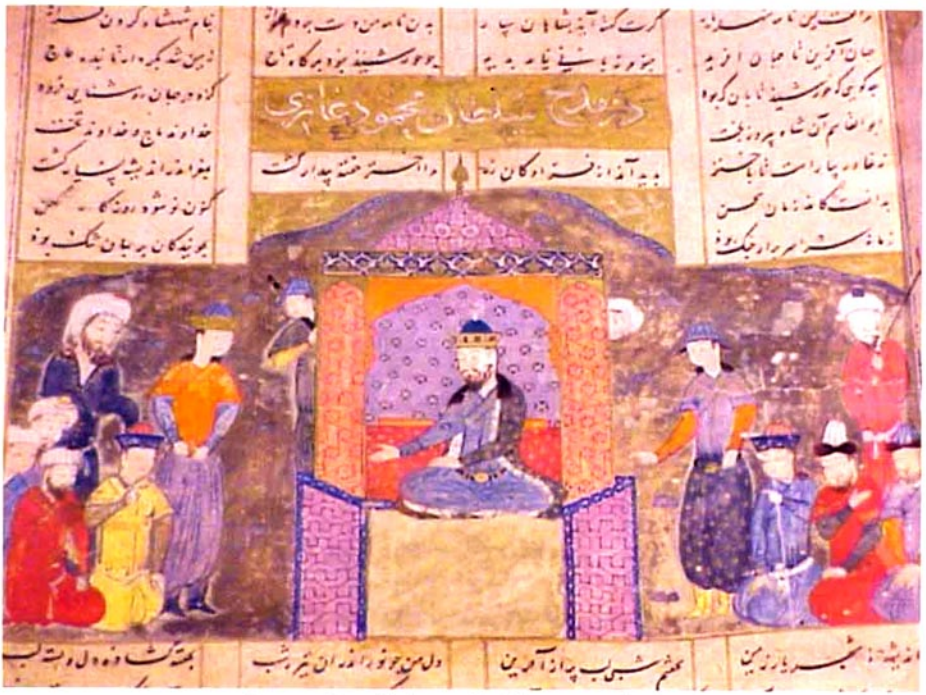

सुलतान महमूद ग़ज़नवी अन्य साहित्यकारों के साथ (फ़िरदौसी कृत शाहनामे की पांडुलिपि का एक पृष्ठ)

बसी रंज बुरदम दरईन साल सी
अजम ज़िंदा करदम बदीन पारसी
न मीरम अज़ईन पस कि मन ज़िंदाअम
कि तुख़्मे-सुख़न रा पराकंदाअम

(मैंने इन तीस वर्षों में अनेक कष्ट वहन किए और इस पुस्तक (शाहनामा) को काव्यबद्ध किया। इस फ़ारसी कृति के द्वारा मैंने ईरान के इतिहास को पुनर्जीवित कर डाला है। इस कार्य के कारण अब मैं मरने वाला नहीं बल्कि अमर रहूँगा। क्योंकि मैंने काव्य द्वारा अपने अमरत्व का बीजारोपण कर दिया है।)

महमूद ग़ज़नवी के अतिरिक्त उसके अमीर (सामंत) तथा मंत्रीगण भी साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। उनमें क़ाबूस वश्मगीर तथा साहिब बिन अबाद जैसे प्रबुद्ध एवं साहित्य प्रेमी मंत्री भी शामिल थे। इन्हीं साहित्य

आश्रयदाताओं के कारण राजधानी ग़ज़नी के अतिरिक्त बुख़ारा, समरकंद, रे, इस्फ़ाहान तथा तबरिस्तान शिक्षा एवं ज्ञान के आलय तथा साहित्यकारों के गढ़ बने।

काव्य के क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति क़सीदे ने की। उन्सरी, फ़रुख़ी तथा मनूचहरी ने क़सीदे को अपनी प्रतिभाशाली अभिव्यक्ति से शिखर पर पहुँचाया। परंतु शब्दाडंबर तथा अलंकारों की भरमार तथा अभिव्यक्ति की क्लिष्टता के कारण काव्य सुगमता एवं स्पष्टता से दूर होता गया। अन्य काव्य विधाओं में क़सीदे के साथ-साथ ईरानी साहित्यविदों द्वारा रचित मसनवी, रुबाई तथा ग़ज़ल को भी श्रेष्ठता तथा प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

इस काल के प्रसिद्ध विद्वान अलबेरूनी ने 'अत्तफ़हीम लावायेल सिनायतुल-तनज़ीम' नामक फ़ारसी ग्रंथ ज्योतिष शास्त्र (नजूम) पर लिखा। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि नजूम की सूक्तियाँ अरबी के बदले फ़ारसी में हैं। मशहूर तत्ववेत्ता हकीम इब्ने सीना ने दानिशनामा-ए-अलाई फ़ारसी में रचा तथा आध्यात्मिक सिद्धांत का प्रारूप तैयार किया। इब्ने सीना की अन्य रचनाएँ भी हैं। इसी युग से संबंधित इतिहास लेखन कार्य में प्रसिद्ध लेखक अबुल-फ़ज़ल बैहक़ी की प्रसिद्ध रचना तारीख़े-बैहक़ी है। इसकी शैली सुगम, स्पष्ट तथा प्रमाण पर आधारित है। अली बिन उसमान हुज्वीरी ग़ज़नवी अथवा दाता गंजबख़्श की पुस्तक कशफ़ुल-महजूब फ़ारसी सूफ़ी मत की पहली पुस्तक है। इनका मक़बरा लाहौर में है।

ग़ज़नवियों को परास्त कर सलजूक़ शासकों ने ईरान के बृहत् क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। फ़ारसी भाषा तथा साहित्य की उन्नति बराबर होती रही। परंतु ग़ज़नवियों के काल से ही फ़ारसी अन्य देशों में भी फैलने लगी। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि मसनवी, ग़ज़ल तथा रुबाई फ़ारसी काव्य की विधाएँ हैं। इनके समरूपी अरबी साहित्य में ढूंढ़ने पर मिलते तो हैं परंतु इतने उत्कृष्ट नहीं हैं। क़सीदे की तशबीब से ग़ज़ल की उत्पत्ति हुई। मसनवी आख्यानक काव्य को अंतहीन विषय के लिए चुना गया तथा रुबाई (चौपाई) महत्त्वपूर्ण बात को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का माध्यम बनी। इस युग के अधिकांश कवियों ने इन सभी विधाओं में कविता लेखनीबद्ध की है। ग़ज़नवी युग में फ़ारसी गद्य की भी अभूतपूर्व उन्नति हुई। इस युग के गद्यलेखकों में निज़ामुलमुल्क तूसी को विशेष स्थान प्राप्त है। निज़ामुलमुल्क दो सलजूक़ी बादशाहों अस्पअर्सलान तथा मलिक शाह के 30 वर्ष तक मंत्री रहे। सियासतनामा इनकी प्रसिद्ध रचना है जिसकी भाषा तथा लेखनशैली सरल तथा सुगम है। शिक्षा के प्रसार में भी निज़ामुलमुल्क ने विशेष योगदान दिया। उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल, निज़ामिया के नाम से समस्त ईरान में शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम संगे-मील माना जाता है। इस युग का अन्य गद्यलेखक अमीर उन्सुरुल मआली कैकाऊस है, जो तबरिस्तान का शासक था। इसने अपने पुत्र गीलानशाह के लिए उपदेश ग्रंथ, 'क़ाबूसनामा' संकलित किया। बड़े ही मनोरंजक ढंग से छोटी-छोटी कहानियों द्वारा इसने सदाचार को समझाने का प्रयत्न किया है। एक अन्य उल्लेखनीय पुस्तक 'तज़किरतुल औलिया' है, जिसका प्रणेता प्रसिद्ध सूफ़ी विद्वान् फ़रीदुद्दीन अत्तार है। यह पुस्तक जनसाधारण में सूफ़ी मत के प्रचार की दृष्टि से लिखी गई थी। इसमें प्रसिद्ध सूफ़ियों के जीवनचरित्र तथा उनके उपदेश कथा रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इसकी भाषा तथा लेखनशैली साधारण लेकिन आकर्षक है। नैतिक आचरण पर हिंदुस्तान में रचित हितोपदेश का पहलवी में अनुवाद सासानी काल में बरज़ुईया द्वारा किया गया। तदुपरांत अब्दुल्ला बिन मुक़फ़्फ़ा ने इसका अरबी में अनुवाद किया तथा यह अनुवाद 'कलीला-ओ-दिमना' के नाम

से प्रसिद्ध हुआ। इसी काल में अरबी से फ़ारसी में नसरुल्ला ग़ज़नवी ने इसका अनुवाद किया, पर यह सरल एवं सुगम नहीं है। नीति एवं आचरण पर रचित अन्य समकालीन प्रमुख पुस्तकों में 'कीमीया-ए-सआदत', इमाम ग़ज़ाली की कृति भी है। इस युग की एक श्रेष्ठ रचना 'चहार मक़ाला' है जिसका रचयिता निज़ामी उरूज़ी समरकंदी है। यह सन् 551-52 हि. की रचना है। इसकी भाषा तथा शैली अत्यंत सरल है। इसमें हकीमों, कवियों, ज्योतिर्विदों तथा लेखकों के लिए उपदेश हैं। ग्रंथ के विषयों को लेखक एवं कवियों के जीवन में घटित घटनाओं के वर्णन द्वारा स्पष्ट किया गया है। इस काल की प्रसिद्ध साहित्यिक पुस्तक 'मक़ामात हमीदी' है, जिसका लेखक काज़ी हमीदुद्दीन बलखी है। यह अरबी के दो विख्यात ग्रंथ मक़ामात अबुलफ़ज़्ल हमादानी तथा मुक़ामात हरीरी का फ़ारसी रूपांतर है।

ख़ुरासानी शैली–सामानी दौर से ग़ज़नवी काल तक रचा गया फ़ारसी साहित्य ख़ुरासानी शैली के नाम से जाना जाता है। यह साहित्यिक शैली सुगम, स्पष्ट एवं आडंबर रहित है तथा फ़ारसी साहित्य का यह प्रारंभिक रचना काल है। इसे फ़ारसी भाषा में अरबी भाषा एवं साहित्य के संलयन उपरांत का साहित्य भी कहते हैं। इस काल में ईरानी साहित्यकारों ने अरबी लिपि को तो स्वीकार लिया लेकिन बरीयता फ़ारसी शब्दों को ही दी। केवल उन्हीं अरबी शब्दों को अपनाया जिनके समानार्थी शब्द फ़ारसी में नहीं थे जैसे, क़िबला, हज आदि। परंतु जिन शब्दों के फ़ारसी समानार्थी शब्द सुलभ थे, लेखकों ने उन्हीं को अपनाया, जैसे रोज़ा, नमाज़, ख़ुदा, ईज़द इत्यादि। इसी प्रकार अलंकारों एवं उपमाओं में भी अरबी शब्दों का बाहुल्य नहीं था। ख़ुरासानी शैली की काव्य विधाओं में अधिक प्रचलन क़सीदे का ही था। काव्य की अन्य विधाएँ जैसे, रुबाई, ग़ज़ल तथा मसनवी भी प्रचलित थीं। मनूचहरी के क़सीदों से अरबी शब्दाडंबर तथा दुरूह कल्पनाओं का श्री गणेश होता है तथा नासिर ख़ुसरो से क़सीदा जो सिर्फ़ बादशाहों की स्तुति के लिए सीमित था, धार्मिक विषयों की स्तुति में प्रयुक्त होने लगा। ये नए आयाम ख़ुरासानी शैली को इराक़ी शैली की ओर उन्मुख कर रहे थे।

संक्षेप में, सलजूक़ एवं अन्य समकालीन शासकों के संरक्षण में फ़ारसी भाषा का विपुल साहित्य अस्तित्व में आया। लेकिन आगामी युग में इस साहित्य को अपूरणीय क्षति पहुँची।

सलजूक़ काल

ग़ज़नवियों के सरदार सलजूक़ों ने क्षीण होती ग़ज़नवी हुकूमत पर स्वयं का वर्चस्व स्थापित कर विशाल सलजूक़ राज्य स्थापित किया। सलजूक़ी शासन की कई विशिष्टताएँ इसलाम पूर्व सासानियों के समकक्ष थीं। इनके दरबारों में फ़ारसी साहित्य एवं अन्य कलाओं को पूर्ण संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सलजूक़ियों के अतिरिक्त इस काल में ईरान तथा आस-पास के क्षेत्रों में अपना अस्तित्व बनाए हुए कुछ अन्य छोटे-छोटे राजवंश भी फ़ारसी साहित्य की उन्नति, प्रचार एवं प्रसार में संलग्न रहे। इनमें ग़ौरी, ख़ारिज़्म शाही, बूई, ग़ज़नवी तथा अतायक शासन प्रसिद्ध हैं। इस युग में रचित फ़ारसी साहित्य बहुआयामी था। ग़ज़नवी युग में रचित अधिकांश काव्य (फ़िरदौसी के अतिरिक्त) दरबारी अथवा बज़्मिया या प्रशंसाकारी विधाओं तक सीमित रहा। लेकिन सलजूक़ी काल का काव्य इस सीमा को पार कर नैतिक तथा आध्यात्मिक विषयों की ओर अग्रसर हुआ। ईरान में सूफ़ी काव्य का प्रथम

चरण इसी काल से प्रारंभ हुआ। इस काल के महान् सूफ़ी शायर बाबा ताहिर उरयाँ, अबूसईद अबिल ख़ैर, सनाई, शेख़ अत्तार ने उत्कृष्ट आध्यात्मिक कविताएँ लिखीं। इनके माध्यम से उन्होंने दयाशीलता, मानवता, लोक-परलोक संबंधी ज्ञान के मूल तत्त्व तथा अध्यात्म पर लोगों का ज्ञानवर्द्धन किया। इन कवियों में अबूसईद अबील ख़ैर की रुबाइयाँ, शेख़ अत्तार की रचना मंतिकुत्तैर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बाबा ताहिर को सबके-हिंदी (भारतीय-फ़ारसी साहित्य शैली) का अग्रज माना जाता है। यही सूफ़ी काव्य आगे चलकर तैमूरी एवं ईलख़ानी काल में मौलाना रूम एवं हाफ़िज़ का प्रतिदर्श बना।

सलजूक़ काल में काव्य की सभी विधाओं में कविताएँ लेखनीबद्ध हुई। क़सीदा कहने वाले कवियों में ख़ाक़ानी शेरवानी, अनवरी, ज़हीर फ़ारयाबी के नाम ही काफ़ी हैं। ख़ाक़ानी को इन सब में वरीयता प्राप्त है। उनका क़सीदा लेखन केवल प्रशंसा तक ही सीमित नहीं बल्कि भर्त्सना का भी द्योतक है। उन्होंने सासानियों की राजधानी मदायन के खंडहरों पर जो क़सीदा लिखा है वह अनुपम है। उनके क़सीदों में ओज तथा तड़क-भड़क बहुत है परंतु साथ ही साथ क्लिष्टता तथा कल्पना का आडंबर भी अधिक है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'तुहफ़तुल्एराक़ीन' है। इसी समय उमर ख़य्याम भी हुए जिनकी रुबाइयाँ विश्व प्रसिद्ध हैं और उनका अनुवाद प्रायः सभी भाषाओं में हो चुका है। उमर ख़य्याम केवल कवि ही नहीं अपितु ज्योतिषी तथा गणितज्ञ भी थे। वह कभी-कभी कविता के माध्यम से जगत में घट रही तत्कालीन घटनाओं से उद्भूत सांसारिक अस्थायित्व के दर्शन को लेखनीबद्ध कर मन के बोझ को हल्का कर लेते थे। नासिर ख़ुसरो इस युग का प्रसिद्ध साहित्यकार था, जिसने गद्य तथा पद्य दोनों उच्चकोटि का लिखा। इसने अपनी साहित्यिक प्रवीणता को अपने धार्मिक विचारों का प्रचार करने में विशेष रूप से प्रयोग किया। पद्य में इसका दीवान रूशनाईनामा तथा सआदतनामा प्रसिद्ध हैं। गद्य में ज़ादुल्मुसाफ़िरीन तथा सफ़रनामे ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। इस युग के सबसे ख्यातिलब्ध कवि निज़ामी गंजवी हैं जिनकी पाँच मसनवियाँ 'ख़म्से' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं—मख़ज़नुल इसरार, ख़ुसरो व शीरीं, लैला व मजनूं, हफ़्तपैकर या बहरामनामा तथा सिकंदरनामा। निज़ामी कहानियों को पद्यबद्ध करने में बहुत निपुण था। उसने अनेक प्रकार की नई-नई उपमाओं एवं अलंकारों आदि का प्रयोग किया है। उनका अनुसरण करते हुए अनेक ईरानी एवं हिंदुस्तानी फ़ारसी कवियों ने ख़म्से कविताबद्ध किए। इन अनुसरणकर्ता कवियों में अमीर ख़ुसरो देहलवी (मृ. 1325 ई.) का ख़म्सा इस शृंखला में प्रथम एवं उत्कृष्ट माना गया है। जामी ने भी निज़ामी की शैली में ख़म्सा रचनाबद्ध किया। लेकिन निज़ामी द्वारा रचित कथा-काव्य अपने आप में अनूठा है। निज़ामी की मृत्यु सन् 1203 ई. में हुई।

मुग़ल तथा तैमूरी काल

तेरहवीं शताब्दी में ईरान पर मुग़लों के अमानवीय एवं घातक आक्रमणों ने फ़ारसी भाषा एवं साहित्य में कई नवीन आयमों को जन्म दिया। चंगेज़ ख़ान के हमलों से प्रभावित ईरान के अनेक साहित्यिक केंद्र केवल इतिहास के पन्नों में सिमटकर रह गए। मंगोलों के वंशज ईलख़ानी तथा तैमूरियों ने ईरान पर सोलहवीं शताब्दी तक राज किया।

ईलख़ानियों में अबा क़ाआन, ग़ाज़ान और अलजायतो तथा तैमूरियों में तैमूरलंग, शाहरुख़, उलूग़ बेग और

अबुसईद प्रसिद्ध शासक हुए। इनके शासन काल में आक्रमणों के कारण क्षत-विक्षत फ़ारसी साहित्य पुनर्जीवित हुआ। इसका कारण यह था कि ईरानी संस्कृति एवं सभ्यता की जड़ें इतनी गहरी एवं मज़बूत थीं कि इसका उन्मूलन असंभव था। नये शासकों पर भी इस संस्कृति का प्रभाव पड़ा और उन्होंने साहित्य एवं साहित्यकारों को संरक्षण प्रदान किया। अनेक साहित्यविद् एवं प्रबुद्ध विभूतियों को दरबार में उच्च स्थानों पर नियुक्त किया गया। इनमें ख़ाजा नसीरुद्दीन तूसी, ख़ाजा शमसुद्दीन मुहम्मद जुवैनी, अता मलिक जुवैनी तथा रशीदुद्दीन फ़ज़लुल्लाह उल्लेखनीय हैं। इन्हें मंत्री, सलाहकार तथा गवर्नर जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन किया गया। इनके संरक्षण में फ़ारसी साहित्यकारों को पुनः प्रगति करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी काल में इतिहास लेखन पर अनेक कृतियाँ लेखनीबद्ध हुईं। इनमें स्वयं जुवैनी द्वारा लिखित तारीख़े-जहाँगुशा (कुशा) भी है।

तारीख़े-जहाँगुशा में मुगलों के व्यवहार, स्वभाव, शासनपद्धति आदि पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इसमें भौगोलिक वृत्तांत भी है पर इस ग्रंथ की लेखन शैली में आडंबर भरा हुआ है। अरबी शब्दों, कहावतों तथा कुरान की आयतों का भरपूर प्रयोग होने के कारण जो लोग अरबी भाषा नहीं जानते वे इस पुस्तक को सरलता से पढ़कर पूरा आनंद नहीं ले सकते हैं। परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। तारीख़े-जहाँगुशा के समान एक अन्य पुस्तक तारीख़े-वस्साफ़ है जिसका लेखक शहाबुद्दीन अब्दुल्ला है। यह सन् 663 हि. में शीराज़ में पैदा हुआ और आठवीं सदी हिजरी के मध्य तक जीवित रहा। तारीख़े-वस्साफ़ की शैली आडंबर तथा अत्युक्तियों से भरी हुई है परंतु ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से अच्छी पुस्तक है। तारीख़े-जहाँगुशा के बाद की सभी घटनाओं का इसमें वर्णन है। रशीदुद्दीन फ़ज़लुल्लाह द्वारा लिखित जामेउत्तवारीख़ भी इस युग के इतिहास लेखन का अनुपम उदाहरण है। हम्दुल्लाह मुस्तौफ़ी क़ज़वीनी इस युग का एक इतिहासकार है। इसकी पुस्तक नुज़हतुल्क़ुलूब इतिहास संबंधी अनुपम रचना है। नसीरुद्दीन तूसी की श्रेष्ठ रचनाओं में तर्कशास्त्र संबंधी एसासुल-इक्वास है। इनकी लिखित मेयारुल-आशआर छंदशास्त्र की रचना है। परिवर्तित परिस्थितियों में आचरण एवं व्यवहार पर बल देने के लिए अनेक पुस्तकें इस काल में लेखनीबद्ध हुईं। तूसी द्वारा लिखित आचरण एवं नीतिशास्त्र पर आधारित पुस्तक अखलाके-नासीरी संदर्भ ग्रंथ है। इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकारों में शेख़ (मुशर्रफ़ुद्दीन मुसल्लाह बिन अब्दुल्लाह) सादी का विशिष्ट स्थान है। अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने सामाजिक सुधार एवं साहित्यिक उन्नति के लिए आचरणशास्त्र संबंधी पुस्तकें गुलिस्ताँ और बूस्तान लिखीं। इनके काव्य एवं गद्य संग्रह में उपरोक्त दोनों पुस्तकों के अतिरिक्त ग़ज़लें, क़सीदे तथा अन्य काव्य विधाओं का अनुपम संकलन है। इनकी लेखन शैली अत्यंत सुगम तथा आकर्षक है। सादी पद्यात्मक गद्य के प्रथम कवि हैं। गुलिस्ताँ की अनेक साहित्यिक एवं भाषायी विशेषताएं हैं। इसी कारण यह कृति सदैव पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग रही है। इसकी भाषा ने ईरानियों के अतिरिक्त हिंदुस्तानियों के भी फ़ारसी भाषा के ज्ञानवर्द्धन में विशेष भूमिका निभाई है। इसमें लिखित मुहावरे फ़ारसी न जानने वालों की ज़बान पर भी आसानी से चढ़ जाते हैं। जैसे, 'बुज़ुर्गी बअक़्ल अस्त न ब साल' (महानता बुद्धि से होती है न कि उम्र से)।

सलजूक़ी दौर में हुए विनाशकारी कार्यों से त्रस्त मनुष्यता को इस दौर में रचित सूफ़ी काव्य ने ढारस बँधाकर ईश्वर पर आस्था बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस काल में सूफ़ियाना कवित्त की विशेष उन्नति हुई। सूफ़ी मत में संसार की नश्वरता पर बड़ा बल दिया जाता है। इस काल के सामाजिक जीवन में बहुत सी बुराइयाँ

आ गई थीं, जिनपर इस समय के कवियों ने बहुत कुछ लिखा है। इस काल के बड़े कवियों में से जलालुद्दीन रूमी उल्लेखनीय हैं। ये सन् 1207 ई. में बल्ख़ में पैदा हुए और सन् 1273 ई. में क़ुनिया (तुर्की) में स्वर्ग सिधार गए। इनकी प्रसिद्ध मसनवी की सूफ़ी संसार में बड़ी मान्यता है तथा इसे फ़ारसी भाषा की क़ुरान कहा जाता है। रूमी के सूफ़ी काव्य की विशिष्टता यह है कि उन्होंने सूफ़ी दर्शन को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। उनका सूफ़ी काव्य प्रबुद्ध सूफ़ी-दार्शनिकों के लिए ही नहीं अपितु साधारण व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य है। मसनवी के अतिरिक्त इनका एक दीवान तथा अन्य काव्य रचनाएँ भी हैं। उनका दीवान, दीवाने-शम्स 'तबरेज़' के नाम से प्रसिद्ध है।

इनके सूफ़ी काव्य का प्रभाव ईरान के बाहर भी ख़ूब फैला। आगामी शताब्दियों में प्रगट हुए अनेक सूफ़ी-संतों ने सूफ़ियाना विचारों को कहने के लिए रूमी की मसनवी को माध्यम बनाया। भारत में मुसलिम सूफ़ियों के अतिरिक्त ग़ैर मुसलिम सूफ़ी, जैसे रामतीर्थ तथा राधास्वामी मत ने मौलाना रूम के काव्य को अपने प्रवचनों में सदैव प्रमुख स्थान दिया है। कुछ बुद्धिजीवियों के अनुसार मौलाना रूम का काव्य भारतीय अध्यात्म दर्शन के अतिनिकट है। इनकी मसनवी का प्रथम शेर है :

बिशानों अज़ नै चुन हिकायत मी कुनद

व अज़ जुदाईहा शिकायत मी कुनद

(बाँसुरी (आत्मा) को सुनो जब वह अपनी आत्मकथा सुनाती है और अपने मूल से हुए विच्छेद की शिकायत करती है) यह शेर अध्यात्मवाद का द्योतक है।

इस युग के अन्य कवियों में हास्य रस के कवि उबेद ज़ाक़ानी का उल्लेख भी आवश्यक है। ज़ाकानी ने काव्यात्मक व्यंग्य में अपने समय की सामाजिक कुरीतियों का अच्छा वर्णन किया है। तुर्कों तथा मुगलों के आक्रमणों से उत्पन्न बुराइयों का विवरण पद्य में प्रस्तुत किया है। साहित्यिक आलोचना की झलकियाँ भी इसमें सम्मिलित हैं। अमीर ख़ुसरो पर इन्होंने विशेष रूप से कटाक्ष किए हैं।

सलमान सावुजी इस युग का मशहूर क़सीदागो है जो बग़दाद के मुग़ल बादशाहों की प्रशंसा किया करता था। फ़ारसी ग़ज़ल को उच्चतम शिखर पर पहुँचाने वाला सबसे बड़ा कवि हाफ़िज़ है। हाफ़िज़ ने सूफ़ी विचारों तथा सूफ़ी मत के सिद्धांतों की आलोचना की है लेकिन मलामती साधुओं की प्रशंसा की है। उसके काव्य में अध्यात्म प्रेम की कल्पनाएँ पठनीय हैं। अनूठे एवं मधुर शब्दों के चयन एवं पारदर्शी कल्पनाओं ने हाफ़िज़ की ग़ज़लों को अमरत्व प्रदान किया है। मानव प्रेम से अध्यात्म दर्शन तक की संवेदना उनकी कविता में अनुभव की जा सकती है। वह सत्य की खोज में वन विचरण की अपेक्षा चिदानंद की ओर प्रेरित करते हैं।

मुग़लों (मंगोलों) के अनंतर तैमूर तथा उसके अनुयायी यद्यपि मुसलमान थे तथापि अत्याचार तथा विनाशलीला में मुग़लों से कम नहीं थे। तैमूर का समय 14वीं शताब्दी ईस्वी से आरंभ होता है और सफ़वी युग के प्रारंभ (सन् 1499 ई.) तक चलता है। इस काल में तुर्की भाषा ने ईरान में प्रबलता प्राप्त की क्योंकि दरबार तथा सेना की भाषा तुर्की थी। परिणामस्वरूप फ़ारसी भाषा की प्रतिष्ठा घटी तथा साहित्य का स्तर भी गिर गया। बग़दाद

का मुग़लों के अधिकार में चले जाने से अब्बासी ख़िलाफ़त का अंत हो गया तथा फ़ारसी भाषा पर छाया हुआ अरबी भाषा का वर्चस्व भी छँटने लगा और विशुद्ध फ़ारसी भाषा में रचनाएँ लिखी जाने लगीं। यह कार्य तैमूरी युग में होता रहा और इस दृष्टि से फ़ारसी की उन्नति अवश्य हुई। इस युग के लेखकों ने इतिहास रचना पर विशेष बल दिया। हाफ़िज़ आबरू इस युग का प्रसिद्ध इतिहासकार कहा जा सकता है। इन्होंने संसार के साधारण इतिहास पर 'ज़ुब्दतुत्तवारीख़' नामक एक बड़ा ग्रंथ लिखा है। इसी काल के दो अन्य इतिहासकार निज़ामी शामी तथा शरफ़ुद्दीन अली यज़्दी हैं। इन दोनों की रचना का नाम 'ज़फ़रनामा' है। अब्दुर्रज़्ज़ाक ने मतलाउल-सादैन लिखा जिसमें सुलतान अबू सईद के समय से सन् 1470 ई. तक की घटनाओं का वर्णन है। मीर ख़ुर्द ने एज़्तुस्सफ़ा लेखनीबद्ध किया। इस कृति में उसने संसार के आरंभ से सुलतान अबू सईद की मृत्यु (सन् 1470 ई.) तक सारे इसलामी संसार के इतिहास का वर्णन किया है। तैमूरी युग के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं : कमाल ख़ुजंदी (मृ. सन् 1400 ई.), मुल्ला मुहम्मद सीरीं मग़रिबी तबरेज़ी, कातिबी निशापुरी तथा मुईनुद्दीन क़ासिम अनवर। इनके अतिरिक्त इस युग के दो अन्य महत्त्वपूर्ण कवि अबू इसहाक़ तथा महमूद क़ारी हैं।

इसी युग के एक अन्य साहित्यविद् दौलतशाह समरकंदी ने सुलतान बैयक़रा के वज़ीर तथा स्वयं महान् कवि शेर अली नवाई के अनुग्रह पर कवियों के जीवनवृत्त 'दरियाए-लताफ़त' का संकलन किया। इस दौर के अन्य कवियों में सुलतान हुसैन बायज़ काशफ़ी का उल्लेख भी आवश्यक है। उनकी पुस्तक 'अनवारे-सुहेली' कलीला-ओ-दिमना का फ़ारसी रूपांतर है। लेकिन ईरान के शिआ मतानुयायी फ़ारसी भाषी क्षेत्रों में उनकी प्रसिद्धि 'रोज़ुत्श शोहदा' नामक पुस्तक के कारण है।

गद्य की दृष्टि से दौलतशाह समरकंदी की पुस्तक 'तज़किरतुश्शोअरा' एक महत्त्वपूर्ण काव्य आलोचना है। लेखक ने यह ग्रंथ उस समय के प्रसिद्ध विद्याप्रेमी मंत्री शेर अली नवाई के नाम से लिखा है। मीर शेर अली नवाई स्वयं एक कवि था। तुर्की में उसने मजालिसुन्नफ़ुनामा लिखा है जिसका फ़ारसी में लतायफ़नामा के नाम से अनुवाद हुआ है। मीर शेर अली के अन्य आश्रितों में हुसैन वाएज़ काशिफ़ी भी है, जिसने प्रसिद्ध पुस्तक अनवारे-सुहेली लिखी है। इसके अनुसरण में हिंदुस्तान में शाहजहाँ के समय में 'बहारे दानिश' लिखी गई। यह पुस्तक (अनवारे-सुहेली) बहुत समय तक मदरसों में पाठ्यक्रम का भाग बनी रही। इसी लेखक की एक और रचना 'अख़लाक़े-मुहसिनी' है जिसकी लेखनशैली सरल तथा सादी है। वास्तव में यह पुस्तक, 'अख़लाक़े-जलाली' की शैली में लिखी गई है जिसका लेखक मुहम्मद बिन असद दव्वानी है। दव्वानी सन् 1406 ई. में परलोक सिधार गया। इसलिए इसका भी उल्लेख इसी काल के लेखकों में किया जा सकता है।

मीर शेर अली ने जिन साहित्यविदों को आश्रय दिया उनमें मुल्ला अब्दुर्रहमान जामी भी थे। वह इस युग के सबसे बड़े कवि थे। जामी ख़ुरासान के जाम नामक ग्राम में सन् 1494 ई. में पैदा हुए थे। इन्होंने तीन दीवान ग़ज़लों के लिखे हैं। इनके काव्य पर हाफ़िज़ का प्रभाव है। उन्होंने निज़ामी के ख़म्से की विधा पर हफ़्त औरंग नामक सात मसनवियाँ भी लेखनीबद्ध की हैं। गद्य में इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'नफ़हातुल्उंस' है, जिसमें गण्यमान्य सूफ़ियों के जीवनवृत्त संगृहीत हैं। इसकी गणना तसव्वुफ़ की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में होती है। जामी की एक अन्य पुस्तक बहरिस्तान है जो शेख सादी के गुलिस्ताँ की शैली का अनुसरण है। वस्तुतः यह पुस्तक उन्होंने अपने सुपुत्र

के लिए लेखनीबद्ध की थी। इन्होंने अरबी व्याकरण पर 'शरहे-जामी' नामक पुस्तक भी लिखी है।

इस प्रकार मुग़ल तथा तैमूरी युग जिसका प्रारंभ अमानवीय अत्याचारों और बर्बरता से हुआ, उसका समापन साहित्य एवं संस्कृति प्रेमी शासकों के आश्रित कवियों एवं लेखकों की अमूल्यवान रचनाओं के साथ हुआ।

इराक़ी शैली–ख़ुरासानी शैली की विशेषताओं में भाषा की सुगमता पर बल था लेकिन तैमूरी युग के कवियों के काव्य में हुए परिवर्तन ने एक नई शैली को जन्म दिया जो इराक़ी शैली के नाम से प्रख्यात है। इस साहित्यिक शैली में अरबी अलंकार, उपमा तथा शब्दों के प्रचलन से फ़ारसी काव्य का रुझान अरबी भाषा की ओर अधिक हुआ। इस काल की अन्य काव्य विधाओं में मसनवी तथा ग़ज़ल कवियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। मसनवी में किसी भी एक अथवा अनेक विषयों के आधार पर अंतहीन काव्य लिखा जा सकता है। सनाई तथा मौलाना रूम द्वारा रचित मसनवियाँ महाकाव्य का रूप हैं।

विभिन्न काल में कवियों ने स्वयं को स्वतंत्र रख स्वेच्छानुसार भाषा की उन्नति में भी सहयोग दिया। ग़ज़ल का प्रमाणित बीजारोपण रूदकी ने किया तथा सादी, हाफ़िज़, कमाल, नूरुद्दीन तथा जामी जैसे चोटी के कवियों ने इसे शीर्ष स्थान पर पहुँचा दिया।

सफ़वी काल

तैमूर की मृत्यु (सन् 1405 ई.) के बाद उसका विस्तृत साम्राज्य विभिन्न सरदारों में विभाजित हो गया जो आपस में लड़ते रहे। ऐसी परिस्थिति एक शताब्दी तक रही जिसके अनंतर सफ़वी वंश का उदय हुआ। सफ़वियों ने समस्त ईरान पर शासन किया। इसलामोत्तर काल में किसी भी वंश का साम्राज्य इतना विस्तृत नहीं था। इनके काल में ईरान ने अभूतपूर्व उन्नति की तथा शिआ मत राजधर्म घोषित हुआ।

संक्षेप में, इस युग के प्रसिद्ध कवियों में हातिफ़ी जामी है जो नूरुद्दीन जामी का भांजा था। उसने लैला-ओ-मजनूं तथा ख़ुसरो-ओ-शीरीं नामक मसनवियाँ तथा तैमूरनामा लिखा। हातिफ़ी का समकालीन कवि फ़ुग़ानी भी उल्लेखनीय कवियों में से है। वह पहले सुलतान हुसैन के दरबार में था परंतु द्वेषियों के कारण तबरीज़ के दरबार में चला गया। यहाँ इसका सम्मान हुआ और इसे बाबा-ए-शुअरा (कवियों का पितामह) की पदवी मिली। फ़ुग़ानी की विशेषता यह है कि इसने अपने शेरों में नई-नई उपमा तथा अलंकारों का प्रभावशाली प्रयोग किया है।

सफ़वी काल का आसिफ़ी (जामी का शिष्य) भी अच्छा क़सीदागो शायर माना जाता है। इसके समकालीन कवि सहली शीराज़ी ने शाह इसमाइल सफ़वी की प्रशंसा में उत्कृष्ट क़सीदे कहे हैं। इसकी ख्याति का कारण मसनवी 'सेहरे-जलाल' है। इसने एक मसनवी 'शमा-ओ-परवाना' भी रची है जिससे उसकी सूफ़ी प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। सहली का समकालीन कवि हिलाली था, जिसने एक दीवान, एक मसनवी 'शाह-ओ-गदा' और एक काव्य 'सिफ़ातुल्-आशिक़ीन' की रचना की। वह सन् 1522 ई. में शिआ धर्म विरोधी उज़बेक तुर्क बादशाह के हाथों मारा गया। इसी समय का दूसरा बड़ा कवि क़ासिमी था, जिसने एक शाहनामा उत्तम काव्य रूप में लेखनीबद्ध किया। इसमें इसने शाह इसमाइल की विजय गाथाएँ लिखी हैं। मुहताशिम काशानी इस काल का सबसे बड़ा

मर्सियागो कवि है। प्रथमतः उसने ग़ज़लें और क़सीदे रचे। कहा जाता है कि जब उसने शाह की स्तुति में क़सीदा पढ़ा तो दाद की बजाय फटकार मिली तथा शाह ने आदेश दिया कि क़सीदे केवल शिआ मत के बुज़ुर्गों की प्रशंसा में ही रचे जाएँ।

सासनियों की भाँति सफ़वियों का समस्त ईरान पर अधिकार राष्ट्रीयता एवं बहुसंख्यक शिआ सत्ता का द्योतक था। शाह इसमाईल सफ़वी अर्दबीली को आज़रबाईजान के तुर्क क्षेत्र में बहुत सम्मान प्राप्त था। वह क़िज़लबाश नामक तुर्की सरदारों की सहायता से सन् 1500 ई. में तबरेज़ में सिंहासनारूढ़ हुए और सफ़वी शासन की नींव डाली। यह वंश ईरान पर आगामी लगभग दो सौ चालीस वर्ष तक शासन करता रहा। इस काल में शिआ मत को राजकीय संरक्षण प्राप्त होने के कारण शिआ मतावलंबियों को सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रवरता प्राप्त हुई। इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम भी रहे। सकारात्मक दृष्टिकोण से ईरान सासानी काल के उपरांत अथवा इसलामोत्तर काल में संपूर्ण अरब एवं एशिया महाद्वीप में अपने स्वतंत्र एवं बलशाली अस्तित्व की पहचान बना पाया। इससे पूर्व ईरान सदैव तुर्की, मध्य एशिया अथवा रोमन साम्राज्यों के आक्रमणों से आतंकित रहा था।

एशियाई, अरब एवं यूरोप के साम्राज्यों ने सफ़वी दरबार में अपने राजदूत भेजे एवं कूटनीतिक संबंध स्थापित किए। ईरान में यूरोपीय शिक्षा एवं ज्ञान का प्रारंभ इसी काल में हुआ। हस्त कलाओं एवं ललित कलाओं में अभूतपूर्व उन्नति हुई। लेकिन साहित्य किसी एक मत अथवा दृष्टिकोण विशेष की सत्ता में नहीं पनप सकता। अतः सफ़वियों से पूर्व अस्त-व्यस्त राजनीतिक अवस्था तथा सफ़वियों की एक मत नीति ने साहित्यविदों के स्वतंत्र अस्तित्व को संकट में डाल दिया। परिणामस्वरूप भारत में समकालीन सुदृढ़ मुगल साम्राज्य जो स्थिर राजनीतिक तथा आर्थिक अवस्था के कारण साहित्य संरक्षण के लिए प्रसिद्ध हो गया था ईरान के प्रवासी साहित्यकारों के लिए आश्रय स्थल बना। मुगल बादशाहों, शहज़ादों एवं अमीरों (सामंतों) ने फ़ारसी साहित्य के पुनरुत्थान में पूर्ण सहयोग देकर फ़ारसी साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा।

साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र इस काल में अपने शीर्ष स्थान पर पहुँचा। यद्यपि हिंदुस्तान में फ़ारसी साहित्य का रचना काल दसवीं शताब्दी ईस्वी से प्रारंभ हो चुका था। मनोहर तोसनी, मसऊद साद सलमान, अमीर ख़ुसरो, हसन सिज्ज़ी, ज़ियाउद्दीन बर्नी आदि अनेक कवि एवं लेखकगण फ़ारसी साहित्य की रचना में संलग्न थे। लेकिन सफ़वी कालीन ईरान से ईरानी साहित्यकारों के पलायन ने फ़ारसी साहित्य की मुख्य धारा को बदल दिया। सफ़वी दरबार में जो साहित्य रचना हुई उसमें अधिकांश शिआ मत संबंधी धार्मिक साहित्य था। काव्य विधाओं में मर्सिए को अधिक उन्नति प्राप्त हुई। उचित संरक्षण न मिल पाने पर जो कवि एवं लेखक ईरान से चले गए उन्हें घर से बाहर अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। हिंदुस्तान के अतिरिक्त तुर्की द्वितीय प्रश्रयस्थल बना। हिंदुस्तान के वातावरण का प्रभाव ईरानी कवियों की रचनाओं पर उभरकर आना स्वाभाविक था। ईरान के साहित्यकारों ने पलायन करने वाले साहित्यकारों की रचनाओं की गणना निम्नकोटि में कर सबके-हिंदी (हिंदुस्तानी-फ़ारसी साहित्यिक शैली) की श्रेणी में रखा। उनके अनुसार हिंदुस्तानी शैली मूल ईरानी साहित्य संस्कृति से दूर तथा काल्पनिक एवं अप्राकृतिक भावार्थ, विचार, अलंकार और उपमाओं का मिश्रण थी। उपरोक्त शैली में व्याप्त दुरूह कल्पनाएँ एवं शब्दाडंबर ने पद्य एवं गद्य को भाषा के प्राकृतिक रूप एवं सुगमता से वंचित कर दिया। इस शैली में लिखने वाले जब

ईरान वापस पहुँचे तो उनकी रचनाओं को हीन दृष्टि से देखा गया। इस साहित्यिक शैली को ईरान में इस्फ़ाहानी शैली भी कहा जाता है।

सफ़वी वंश के सबसे प्रमुख बादशाह शाह अब्बास प्रथम का दरबार साहित्यिक विभूतियों का केंद्र था। साहित्य एवं स्थापत्य कला के क्षेत्र में उसके काल में अभूतपूर्व उन्नति हुई। इस्फ़ाहान में विद्यमान अनेक भव्य इमारतें जिनके कारण इस शहर को निस्फ़े-जहान (अर्द्ध संसार) कहा जाता है उसी के काल में निर्मित हुई। शानी तेहरानी तथा हकीम शिफ़ाई उसके ही दरबारी कवि थे। शिफ़ाई ने मसनवियाँ तथा क़सीदे लिखे हैं। इस काल का अन्य बड़ा कवि साईब तबरेज़ी था। यद्यपि उसने हिंदुस्तान की यात्रा भी की लेकिन वापस आकर सफ़वी दरबार से संलग्न हो गया। उसके काव्य में भी हिंदुस्तानी शैली के तत्त्व दृष्टिगोचर हैं। साईब शाह अब्बास द्वितीय के दरबार में मलिकुश शौअरा के पद पर आसीन हुआ। साईब का कलाम उस काल की ईरानी एवं हिंदुस्तानी शैलियों का मिश्रण है। 'जुलाली ख़्वानसारी' शाह अब्बास के काल का प्रसिद्ध मसनवी रचयिता था। इसने सात मसनवियाँ लिखीं, जिन्हें 'सुबए-सैयारा' (सात नक्षत्र) कहते हैं।

शेख़ बहाई अर्थात् बहाउद्दीन आमुली ने शाह अब्बास के आदेश पर शिआ नियमों पर आधारित पुस्तक 'जमाए-अब्बासी' लेखनीबद्ध की। शाह अब्बास की विजयों के वर्णन में कमाली सब्ज़वारी ने एक शाहनामा लिखा। इसकंदर बेग मुंशी ने शाह अब्बास की जीवनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तारीख़े-जहाँआरा-ए-अब्बासी' में लिखी है।

सफ़वी दौर के अंतिम वर्षों का मशहूर साहित्यकार अब्दुल अलनजात इस्फ़ाहानी (मृ. सन् 1714 ई.) था। इसकी रचनाओं में मसनवी 'गुल कुश्ती' प्रसिद्ध है। नादिरशाह सफ़वी काल के अंतिम दौर का वास्तविक शासक था। उसके आंतक से कई साहित्यकार भागकर हिंदुस्तान तथा तुर्की चले गए। इनमें हिंदुस्तान आने वालों में शेख अली हज़ीन थे जिनकी रचनाओं में सात मसनवियाँ, चार काव्य संग्रह तथा समकालीन साहित्यिक विभूतियों के जीवनवृत्त पर आधारित पुस्तक तज़किरतुल मुआसिरीन प्रमुख हैं। उन्होंने हिंदुस्तानी फ़ारसी रचयिताओं का भी ख़ासा मज़ाक़ उड़ाया है। लेकिन उसका जवाब उस काल के प्रसिद्ध साहित्यविद् आरिज़ू ने अपनी रचनाओं में दिया है। सफ़वी काल के अंतिम दौर का आज़री तुर्की क़बीले शामलू से संबंधित एक अन्य साहित्यकार लुत्फ़ अली आज़र भी उल्लेखनीय है। उनकी रचना 'आतिकदा' आठ सौ साहित्यकारों की रचनाओं एवं जीवनवृत्त का संग्रह है।

सफ़वी शासन का अंतिम दौर नादिरशाह अफ़शार के वर्चस्व का युग था। विद्रोही अफ़ग़ानों को कुचलने तथा हिंदुस्तान पर प्राप्त विजय एवं अपार दौलत ने उसकी इच्छाओं को प्रबल बना दिया था। लेकिन इस विजय एवं लूटी हुई दौलत ने ही उसके विश्वासपात्रों को उसका विरोधी बना दिया। उसका पुत्र रिज़ाकुली ख़ां भी उनमें सम्मिलित था। परिणामस्वरूप नादिरशाह ने रिज़ाकुली को ही अंधा करवा दिया।

लेकिन यही कुकृत्य नादिरशाह के क़त्ल का कारण बना। नादिरशाह के क़त्ल के साथ ही अफ़शार वंश का भी सर्वनाश हुआ। नादिरशाह ने अपार दौलत तो एकत्र की लेकिन उस दौलत को प्रजा के हित या साहित्य के संरक्षण पर ख़र्च नहीं किया।

अफ़शार वंश के अयोग्य उत्तराधिकारी अधिक समय तक कार्य न सँभाल पाए। शीराज़ में करीम ख़ां ज़ंद ने ज़ंद वंश की स्थापना की तथा शीराज़ को अपनी राजधानी बनाया। उसके काल में ईरान पुनः एक महान् शक्ति के रूप में उभरा लेकिन यह युग अल्पकालीन था। सन् 1779 ई. में करीम ख़ां ज़ंद की मृत्यु के साथ फिर ईरान में अस्थिरता का वातावरण छा गया।

क़ाजार काल

सफ़वियों के पश्चात् अफ़शार वंश तथा ज़ंद वंश ने सन् 1761 ई. तक राज्य किया। तत्पश्चात् सन् 1797 ई. में कई वर्षों के प्रयास उपरांत आग़ा मुहम्मद ख़ान क़ाजारी राजवंश की स्थापना करने में सफल हुआ। यह तुर्क क़बीला था जिसने सफ़वी वंश की स्थापना में सहयोग दिया था। फ़तह अली शाह क़ाजार ने सन् 1801 से सन् 1806 ई. तक शासन किया। वह कवियों तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था। फ़तह अली 'सबा' उसका मलिकुश्शोअरा था जिसने फ़िरदौसी की शैली पर शहंशाहनामा रचा। फ़तह अली शाह का मंत्री ख़ाजा (ख़्वाजा) अब्दुल्वहाब निशात अच्छा कवि था और उसने एक दीवान प्रस्तुत किया। निशात पत्रलेखन में अत्यंत कुशल था। इस युग का श्रेष्ठतम कवि मिर्ज़ा हबीबुल्लाह 'क़ाआनी' था। इसने प्रशंसात्मक क़सीदे तथा हिजोएँ अच्छी कही हैं।

क़ाजारियों के युग में शाह नासिरुद्दीन (सन् 1848-1896 ई.) का विशेष महत्त्व है। यह स्वयं कवि तथा गद्यलेखक था। इसका सफ़रनामा बहुत प्रसिद्ध है जिसमें इसने अपनी यूरोप की यात्रा का वृत्तांत तथा अनुभवों का विवरण दिया है। इसकी लेखन शैली सरल तथा रोचक है। नासिरुद्दीन शाह क़ाजार के राज्यकाल का प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कवि रिज़ाकुली ख़ां लालबाशी है। इसने 'मजमउल्-फ़ुसहा' और 'रियाज़ुल्-आरिफ़ीन' नामक दो तज़किरे लिखकर फ़ारसी साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है। इन दोनों संग्रहों में आरंभ से लेकर अपने समय तक के कवियों के वृत्त संकलित किए गए हैं। इस दृष्टि से यह ग्रंथ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। रिज़ाकुली ख़ां हिदायत ख़ीवा (तुर्किस्तान) में अपने देश का राजदूत था और उसने अपनी रचना सफ़ारतनामे में ख़ीवा के सफ़र का वर्णन अत्यंत आकर्षक शैली में किया है।

आग़ा मुहम्मद ख़ान का राजकाल सन् 1801 ई. तक रहा। कई दृष्टिकोण से यह काल अति महत्त्वपूर्ण है। ईरान के आधुनिकीकरण का काल इसी युग से प्रारंभ हुआ। यूरोपीय साहित्य एवं संस्कृति भी इसी काल में ईरान पर अपना प्रभुत्व जमाने में सफल हुई। रूसियों ने अपनी चालों से ईरान का विशाल क्षेत्र हड़प लिया। अंग्रेज़ों ने आंतरिक राजनीति में कभी रूसियों का साथ दिया तो कभी फ्रांसीसियों का विरोधकर अपना प्रभुत्व बनाए रखने में सफल रहे। अंग्रेज़ों की राजनीति से ही सन् 1856-57 ई. में अफ़ग़ानिस्तान एक स्वतंत्र देश बना। यूरोपीय शिक्षा एवं राजनीतिक जागृति के परिणामस्वरूप ईरानियों में आम अधिकारों का आंदोलन प्रारंभ हुआ जिससे मशरूतियत (संवैधानिक तंत्र) के स्थापन की माँग बढ़ी। अंततः राष्ट्र में संविधान को लागू करने की माँग सन् 1907 ई. में पूरी हुई। लेकिन रूसियों ने संसद पर बम विस्फोट कर अनेक जनतंत्र एवं संविधान प्रिय नेताओं को हलाक किया। इससे पूर्व ईरान में मुद्रण कार्य, रेलवे तथा अनेक आधुनिक व्यवस्थाओं का प्रारंभ हो चुका था।

क़ाजारी युग के प्रमुख शासक नासिरुद्दीन शाह की यूरोप यात्राएँ, चाहे यह रूस से ऋण लेकर की गई हों,

ईरान के आधुनिकीकरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी का यूरोप अनेक परिवर्तनों से गुज़र रहा था। इससे पूर्व फ्रांस में हुई नव जागृति ने विश्व के इतिहास एवं साहित्य पर अपना रंग दिखाना प्रारंभ कर दिया था। व्यापारिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ईरान का इस जागृति से प्रभावित होना स्वाभाविक था। ईरान में नई शिक्षा नीति आरंभ हुई। दारूल फ़ुनून (बहु तकनीकी विद्यालय) की स्थापना इसी दिशा में महत्त्वपूर्ण निर्णय था। इस परिवर्तन ने साहित्य, गद्य एवं पद्य दोनों पर अभूतपूर्व रंग दिखाए। समकालीन हिंदुस्तान में फ़ारसी साहित्य में व्याप्त दुरूह कल्पनाएँ, विषम उपमाएँ तथा उलझे हुए भावार्थ ईरानी फ़ारसी काव्य से विलोप हो रहे थे। काव्य दरबार से निकलकर समाज का दर्पण बन रहा था। गद्य में क्लिष्टता की छाप मिट रही थी। समाचार-पत्रों के प्रकाशन ने साहित्यिक भाषा को प्रजा की भाषा अर्थात् साधारण भाषा के निकट ला दिया था। समानार्थी शब्दों के अभाव में यूरोपीय भाषाओं के शब्द बड़े शौक़ से लेखन में प्रयुक्त होने लगे। पत्र-लेखन में अर्थहीन एवं व्यर्थ संबोधनों को निकालकर सुगम भाषा का प्रयोग व्यवहार में आना शुरू हुआ। साहित्यिक शैली अध्ययन के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह परिवर्तन 'सबके-बाज़गश्त' (पुनरावर्तन शैली) कहलाता है अर्थात् ख़ुरासानी शैली का पुनरागमन। कवियों ने ख़ुरासानी शैली को अपनाकर नई शैली की घोषणा की। फ़तह उल्लाह ख़ां शैवानी ने इसका श्रीगणेश किया। यूरोपीय साहित्य में प्रगट हुआ निराशावाद तथा संपूर्ण यथार्थवाद भी ईरानी कवियों की रचनाओं में शामिल होने लगा। इस युग के कवियों में सहाब इस्फ़ाहानी, निशात इस्फ़ाहानी, विसाल शीराज़ी, क़ाआनी शीराज़ी (क़सीदानिगारी में इस काल का सर्वोत्तम कवि), फ़रोग़ी बुस्तापी सरोश इस्फ़ाहानी आदि अनेक उल्लेखनीय कवि हैं। इनकी रचनाएँ इस युग के बेहतरीन काव्य की प्रतिमान हैं।

इस काल में यूरोपीय शिक्षा के प्रचार तथा बादशाहों के शासन की निर्बलता के कारण वैधानिक शासन का आंदोलन आरंभ हुआ। जनता में नए विचारों के प्रसार के लिए समाचार-पत्रों का बहुत प्रचलन हुआ। कवियों ने जातीय तथा शासकीय कविताएँ लिखना प्रारंभ किया। इस काल में गद्य की बड़ी उन्नति हुई तथा इसकी लेखन शैली इतनी सरल हो गई कि जनता उसे सहज समझ सके। यहाँ तक कि कविता की शैली भी बदल गई। उसमें आडंबर तथा बनावट का स्थान सरलता ने ले लिया। जनता को शासन की बुराइयों से सावधान करने के लिए हाजी ज़ैनुल्-आब्दीन ने एक कल्पित सियाहतनामा (यात्रा-विवरण) 'इब्राहीम बेग' लिखा, जो सन् 1910 ई. में प्रकाशित हुआ। इस काल के प्रसिद्ध कवि पूरे दाऊद, आशरफ़ुद्दीन रुशती, मलिकुश्शोअरा अली अकबर देहख़ुदा, ईरज मिर्ज़ा, इश्क़ी आदि हैं। व्यंग्य साहित्य का एक उद्देश्य समाज सुधार था। ईरज मिर्ज़ा के व्यंग्य में समाज सुधार भी शामिल था। इस काल में महिलाओं ने भी कविता तथा साहित्य के सृजन में बढ़-चढ़कर भाग लिया, जिनमें परवीन एतसामी, परीवश, दुनिया आदि को बड़ी ख्याति मिली। जैसाकि उल्लेख किया गया है, इस काल में फ़ारसी भाषा में सुगमता एवं सरलता की दिशा में अनेक परिवर्तन किए गए। क़ाजारी काल का राष्ट्रभक्त मंत्री अबुलक़ासिम क़ायम मक़ाम फ़राहानी, अब्दुल लतीफ़ तबरेज़ी तथा मिर्ज़ा हबीब इस्फ़ाहानी ने फ़ारसी भाषा में सुधार कार्य की नींव डाली। छापेख़ाने के प्रचलन के उपरांत यह कार्य जनसाधारण में फैला। विभिन्न शहरों में छापाख़ाने स्थापित होने के उपरांत समाचार-पत्र भी प्रकाशित होने लगे। नवीन धारा के समर्थकों में मिर्ज़ा मलकम ख़ान नाज़िमुद्दौला का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसकी लेखनी का प्रभाव अन्य प्रसिद्ध लेखक जैसे अब्दुर्रहीम

तालिबूफ़ की रचनाओं में भी प्रगट होता है।

क़ाजारी काल में यूरोपीय प्रभावाधीन फ़ारसी कथा साहित्य में उपन्यास एवं लघुकथा लेखन कार्य भी प्रारंभ हुआ। कथा साहित्य में तत्कालीन ईरानी समाज, नैतिक मूल्य, आचरण तथा शैक्षिक विषयों को स्थान प्राप्त हुआ। तालिबूफ़ की रचनाएँ, जैसे किताबे-अहमद, यूरोपीय शिक्षाप्रद मूल्यों पर आधारित हैं। तालिबूफ़ की शिक्षाप्रद कथा पद्धति ने सर्वशिक्षा को भी प्रेरित किया। देहख़ुदा ने अस्त-व्यस्त राजनीतिक अवस्था का चित्रण तो किया ही लेकिन उनका सर्वोत्तम कार्य लुग़तनामा-ए-देहख़ुदा (विश्वकोश) के कार्य का श्रीगणेश करना था। (यह विश्वकोश उनके उपरांत डा. मुहम्मद मुईन ने संपूर्ण किया। वर्तमान काल में यह पूर्णतया एक अध्ययन केंद्र है तथा प्रो. शहीदी इसके मुख्य संरक्षक हैं)।

इस काल में फ़ारसी भाषा में नाटक लिखने की प्रथा भी आरंभ हुई। मिर्ज़ा जाफ़र कराचा दाग़ी ने कई नाटकों का तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया। नई शैली के नाटकों के प्रचार से पहले ईरान में एक प्रकार के धार्मिक नाटक मंचित किए जाते थे जिन्हें ताज़िया कहते थे। इसमें करबला के शहीदों के कष्टमय जीवन का अभिनय किया जाता था। लेकिन अब यूरोपीय शैली के अनुकरण में नाटक लिखने एवं मंचन करने का कार्य प्रारंभ हुआ। इसका श्रेय आख़ुंद ज़ादे को जाता है (विस्तार के लिए इसी पुस्तक का नाट्यकला संबंधी अध्याय देखिए)।

व्यंग्यात्मक साहित्य की झलक हमें पहले ऊबैद ज़क़ानी के काव्य में तथा अब देहख़ुदा की रचनाओं में मिलती है। उनका समाचार-पत्र तथा उसमें प्रकाशित 'चरंद-ओ-परंद' तत्कालीन राजनीतिक अवस्था पर कटाक्ष था। क़ाजारी काल का समापन सन् 1924-25 ई. में माना जाता है।

पहलवी काल

सन् 1924 ई. से आरंभ पहलवी वंश का संस्थापक रिज़ा ख़ां था, जिसने बादशाह बनने के उपरांत रिज़ाशाह पहलवी की उपाधि ग्रहण की। यह काल ईरान में जातीय उपासना का है। यूरोपीय आचार-विचार का प्रभाव बहुत बढ़ने पर कवियों ने अपनी रचनाओं में यूरोपीय शैली की नक़ल करने का प्रयत्न किया। सादगी की प्रबलता हुई। जातीय प्रेम के कारण फ़ारसी भाषा की अरबी लिपि त्यागने का आंदोलन खड़ा हुआ पर वह अभी तक सफल नहीं हुआ है। इस युग के कवियों में पूर दाऊद, अली असग़र हिकमत, रशीद यासिमी, आरिफ़ क़ज़वीनी आदि हैं जिनमें जातीयता तथा सादगी की अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

द्वितीय महायुद्ध में महाशक्तियों के हस्तक्षेप के कारण सन् 1943 ई. में रिज़ाशाह को देशनिष्कासन स्वीकार करना पड़ा। उसके उपरांत उसके पुत्र मुहम्मद रिज़ाशाह को बादशाह बनाया गया। महाशक्तियों के बल पर पहलवी शासन सन् 1979 ई. तक चलता रहा। प्रारंभिक काल में संसद को कुछ स्वतंत्रता प्राप्त हुई। लेकिन छठे दशक में जब प्रधानमंत्री मुसद्दक़ के काल में तेल क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न उठा तो महाशक्तियों के दबाव के कारण संसदीय शक्तियों का दमन कर दिया गया। सन् 1961 ई. के उपरांत मुहम्मह रिज़ाशाह का अत्याचारी शिकंजा प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ता गया। शासकीय तंत्र की राष्ट्र विरोधी नीति ने राष्ट्र को संसार के सम्मुख एक प्रगतिशील

राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत किया लेकिन आंतरिक रूप से खोखला कर दिया। पूँजीपतियों का एक अल्पवर्ग पूरे राष्ट्र की संपत्ति का स्वामी बन गया। यूरोपीय प्रभाव ने समाज की सांस्कृतिक जड़ों को क्षीण कर दिया। ऐसे वातावरण में साहित्य की रचना स्वतंत्र एवं निर्विरोध नहीं हो सकती थी। पद्य एवं गद्य में अनेक लेखक वर्ग उभरकर आए। इनमें कुछ साम्यवादी तो कुछ यूरोपीय लेखन से प्रभावित थे। लेकिन इस काल में रचे गए साहित्य में समाज के प्रत्येक वर्ग का संपूर्ण चित्रण देखने को मिलता है। इसकी भाषा जनसाधारण की भाषा हो गई लेकिन साथ-साथ यूरोपीय भाषा का प्रभाव भी फ़ारसी में बढ़ता गया। इस काल के गद्य लेखकों में सैयद फ़ख़रुद्दीन शादमान, ज़ैनुल-आब्दीन राहनुमा, मुहम्मद हिजाज़ी, मुहम्मद अली जमाल ज़ादे, सादिक़ हिदायत, जलाल आले अहमद, बुज़ुर्ग अलवी, सादिक़ चूबक, अली मुहम्मद अफ़ग़ानी, जमाल मीर सादक़ी, समद बहरंगी आदि प्रमुख हैं। प्रसिद्ध कवियों में बहार, परवीन ऐतसामी, तबलुली, परवेज़ नातिल ख़ानलरी, रही मुअय्यरी, शामलू, शहरयार, फ़रोग़ फ़रुख़ज़ाद, नादिर पूर, नीमा यूशीज, अख़वाने-सालिस आदि उल्लेखनीय हैं। पद्य में भी परंपरा से हटकर मुक्त काव्य का प्रारंभ नीमा ने किया। वह नई कविता का मसीहा माना गया। उसकी कविता में परंपराएँ टूटी नहीं थीं लेकिन उसके शिष्यों ने नया रास्ता अपनाया।

पहलवी काल के अंतिम चरण के श्रेष्ठ मुक्त काव्य रचयिताओं में सोहराब सिपहरी का विशिष्ट स्थान है। इस चित्रकार-कवि ने फ़ारसी कविता को नए आयाम प्रदान किए हैं।

आधुनिक फ़ारसी कविता का यह दौर परंपरावादी काव्य से बिल्कुल भिन्न था। ग़ज़ल एवं अन्य विधाओं ने अब मानव प्रेम तथा छायावाद के विषयों से अधिक मानवीय जटिलताओं संबंधी मुद्दों को अपनाया। स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति नई कविता का उद्देश्य था। आधुनिकतावाद का यह रूप बाढ़ की तरह शायरी में उभरकर आया।

नई कविता की शैली 'मौजे-नौ' (नवीन लहर) कहलाई। नये प्रतिमान एवं उपमाओं ने शताब्दियों पुरानी उपमाओं का स्थान ग्रहण किया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि परंपरावादी काव्य नहीं रचा गया। नई कविता का दायरा महानगरों के कुछ वर्ग विशेष तक ही सीमित था। ईरानी समाज अपनी परंपराओं को समूल नष्ट कर दे, यह संभव नहीं था। बहुर एवं शहरयार इस काल के प्रमुख परंपरावादी कवि हुए हैं। उनकी शायरी नए-पुरानेपन का मिश्रण थी। संक्षेप में, इस काल में रचा गया गद्य एवं पद्य पठनीय है।

इसलामी इंक़लाबोत्तर काल

चिरकालीन जनसंघर्ष के उपरांत फ़रवरी 1979 ई. में इमाम ख़ुमैनी के नेतृत्व में इसलामी गणतंत्र सरकार का गठन हुआ। मुहम्मद रिज़ाशाह पहलवी को ईरान से भागना पड़ा। प्रारंभिक वर्षों में महाशक्तियों ने अपने स्वार्थ के लिए वर्तमान इसलामी सरकार के उन्मूलन के अनेक प्रयत्न किए। परंतु सभी असफल रहे। इराक़ के साथ हुए युद्ध से कुछ सीमा तक आर्थिक समस्याएँ तो अवश्य उत्पन्न हुई लेकिन जनता के सहयोग एवं सुदृढ़ योजनाओं से इन सभी समस्याओं पर नियंत्रण पा लिया गया।

इसलामी सरकार ने शिक्षा एवं साहित्य के सकारात्मक पहलू को देखते हुए अनेक पूर्व प्रतिबंधों को हटा दिया। कहा जाता है कि वर्ष 1979-85 ई. तक के अंतराल में इतनी साहित्यिक पुस्तकें मुद्रित हुई जितनी पिछली

अर्द्ध शताब्दी में भी नहीं हुई थीं। पुस्तकों की बिक्री भी असीम थी। साहित्य रचना में प्रत्येक वर्ग को स्वतंत्रता प्रदान की गई। फलस्वरूप पहलवी काल की लगभग सभी प्रतिबंधित पुस्तकें इसलामी क्रांति के उपरांत प्रारंभिक वर्षों में ही मुद्रित हो गईं।

परिवर्तित परिस्थितियों के प्रतिबिंब साहित्य में भी प्रगट हुए। पद्य एवं गद्य दोनों ही प्रभावित हुए। आधुनिक परंपरा एवं नवीन धाराओं में प्रवाहित आधुनिक काव्य विभिन्न विषयों का द्योतक है। आधुनिक पद्य में परंपरावाद का क़ाफ़िला मुहम्मद तक़ी बहार के मार्गदर्शन में चला। उसे शहरयार ने पूर्ण दायित्व से गतिमान रखा। होशंग इब्तहाज आदि ने इसे आगे बढ़ाया। इसी प्रकार नीमा यूशीज ने जो नया स्तंभ स्थापित किया उसके तले खड़े होने वालों में अख़्वाने सालिस, फ़रोग़ फ़रुख़ज़ाद, महदी हमीदी, सोहराब सिपहरी, अमीनी आदि प्रमुख हैं।

इसलामी इंकलाब के उपरांत परंपराओं के पुनः जीवंत होने के कारण विषय दृष्टि से आधुनिक एवं वर्तमान गद्य साहित्यकारों (तथा कुछ लेखक जो पूर्व इसलामी काल से भी संबंधित हैं) को प्रमुखतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) **शोध एवं निबंध लेखक :** मुहम्मद अली फ़रूग़ी, मुहम्मद क़ज़वीनी, अली अकबर देहख़ुदा, मुहम्मद तक़ी बहार, ज़बीहुल्लाह सफ़ा, परवेज़ नातिल ख़ानलरी, अब्दुल हुसैन ज़रीन कूब, मुहम्मद मुईन आदि।

(2) **कथा लेखक :** मुहम्मद अली जमाल ज़ादे, सादिक़ हिदायत, सादिक़ चूबक, बुज़ुर्ग अलवी, बहराम सादक़ी, अली मुहम्मद अफ़ग़ानी, जलाल आले अहमद, सीमीन दानिशवर, ग़ुलाम हुसैन साईदी, महमूद दौलताबादी, समद बहरंगी, होशंग गुलशेरी, अहमदे-महमूद, जमाल मीर सादक़ी, अमीन फ़क़ीरी, मुनीरो रवानीपूर, अमीर हसन चहलतन, मख़मलबाफ़ आदि।

(3) **अनुवादक :** ज़बीहुल्लाह सफ़ा, सईद नफ़ीसी, ख़ानलरी, अबुलहसन नजफ़ी, मुस्तफ़ा रहीमी, ज़हरा ख़ानलरी, जलाल आले अहमद, असगर अली हिकमत, तफ़्ज़ुली तक़ी मुदर्रसी, नाज़िर ज़ादे किरमानी, मुहम्मद अली सिपानलू, जन्नती अताई आदि।

इनके अतिरिक्त वर्तमान काल में फ़ारसी साहित्य के मुख्य स्तंभों में उस्ताद शहीदी, इसमाइल हाकिमी, जलील तजलील, सरकराती, हद्दाद आदिल, रिज़ा मुस्तफ़वी सब्ज़वारी, तौफ़ीक़ सुवाहनी आदि।

पद्य साहित्य में मुक्त काव्य का स्थान पुनः परंपरावादी काव्य ने ले लिया। यथार्थवादी कवियों को इस वर्ग में प्रमुखता प्राप्त थी। परंपरावादी कवियों ने कविता के साँचे में तो परंपरा को यथावत बनाए रखा लेकिन विषय का चयन आधुनिक आवश्यकताओं के आधार पर किया। शब्दों, उपमाओं एवं अलंकारों का चयन भी नवीन था लेकिन शब्दाडंबर एवं क्लिष्टता नहीं थी। ईरान-इराक़ युद्ध ने पद्य में एक नया कवि वर्ग उत्पन्न किया। यह वर्ग केवल युद्ध संबंधी विषयों पर काव्य लिख रहा था। इनमें उल्लेखनीय कवि अली मुअल्लिम, मुहम्मद अली मर्दानी, हमी सब्ज़वारी, अब्दुल जब्बार हुसैन, हुसैने हुसैनी, बहमनी, हुसैन मुनज़वी, शाहरुख़ जज़्बा आदि हैं। इन सभी के काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। गद्य में युद्ध संबंधी कथाएँ प्रमुख रहीं। सामाजिक विषय युद्धोत्तर समस्याओं पर केंद्रित थे। महमूद दौलताबादी का ज़मीने-सूख़्ते इसी विषय पर आधारित है। इनके अतिरिक्त विभिन्न विषयों

पर कथा साहित्य भी रचा गया। दास्ताने-बुलंद (उपन्यास) में भी काफ़ी उन्नति हुई। वास्तव में पिछली अर्द्ध शताब्दी में जो कथा साहित्य रचा गया, जैसे जलाल आले अहमद, सादिक़ हिदायत, बुज़ुर्ग अलवी, सादिक़ चूबक, समद बहरंगी आदि की कृतियाँ इतनी प्रभावकारी हो गईं कि नया कथा साहित्य इनको विस्थापित न कर पाया। वर्तमान काल में मुनीरो ख़ानीपूर तथा आग़ाई चहलतन के नाम प्रमुख कथा रचनाकारों में लिए जाते हैं।

संक्षेप में, वर्तमान फ़ारसी साहित्य भाषा के पूर्णतः जीवंत एवं सक्रिय होने का चिह्न है। साहित्य की उत्कृष्टता संस्कृति के उत्कर्ष एवं प्राचीनता की प्रतीक होती है। फ़ारसी भाषा का विगत ढाई हज़ार वर्ष का उपलब्ध साहित्य इसी तथ्य का प्रमाण है।

●